ISSN No. (E) 2455 - 0817
ISSN No. (P) 2394 - 0344
RNI : UPBIL/2016/67980
VOL-3* ISSUE-7* (Part-1) October- 2018
Monthly / Bi-lingual

Multi-disciplinary International Journal

Remarking An Analisation

Peer Reviewed / Refereed Journal

Impact Factor
GIF = 0.543

Impact Factor
IIJIF = 6.134

Indexed with Google scholar

Impact Factor
SJIF = 5.879

Scanned with CamScanner

25	**Teaching Effectiveness of Secondary School Teachers in Relation to Demographic Factors** Ranjit Kaur, Kavita Sharma, Sirsa & Shamshir Singh Dhillon, Bathinda	131-137
26	**Word - Meaning Theory of Logical Positivism and Advaita Vedanta** Gurmukh , Jaipur, Rajasthan	138-143
27	**Immediate Effect on Heart Rate in the Final Position of Selected Asanas** A K Diwaker, Bidhuna, Auraiya, U.P.	144-147
28	**गाँधी चिन्तन में व्यक्ति** गुलाब चन्द्र मीना, बांदीकुई, राजस्थान	148-150
29	**महिलाओं का समानता का अधिकार एवं सबरीमाला मंदिर प्रवेश व्यवस्था** कविता देवी, मोर माजरा, करनाल	151-154
30	**भारतीय चित्रकला में सामाजिक चित्रण** भूरसिंह जाटव, पावटा, जयपुर, राजस्थान	155-160
31	**पूर्व मध्यकालीन उत्तर भारत में धर्म का स्वरूप** श्वेता, रोहतक	161-164
32	**प्राचीन भारतीय इतिहास में स्तूप का अर्थ तथा उसका उदय (वैदिक युग से लेकर बौद्धकाल तक)** कुमार प्रमोद, जोधपुर, राजस्थान	165-167
33	**राजा रवि वर्मा : व्यक्तित्व एवं कृतित्व** पूनम कुमारी, हिसार	168-172
34	**जनजाति उपयोजना क्षेत्र के उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के स्वसामर्थ्य का अध्ययन** भारती सालवी, उदयपुर, राजस्थान	173-175
35	**जयपुर घराने का सूरज पंडित गिरधारी महाराज** सुरभि शर्मा एवं पं0 गिरधारी महाराज, जयपुर, राजस्थान	176-179
36	**21वीं सदी में राजनीति और बाजारवाद** संगीता, रोहतक	180-182
37	**पं० लखमीचन्द के सांगों में निरूपित ब्रह्म दर्शन** कविता, सोनीपत	183-186
38	**वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अस्मितावादी राजनीतिक चिंतन और साहित्य** राज भारद्वाज, दिल्ली	187-190
39	**भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास 'रेखा' में नारी से जुड़ा मिथक और यथार्थ** रमेश कुमार, सिरसा, हरियाणा एवं ममता, चेन्नई, तमिलनाडु	191-193
40	**मूल्यहीनता के सन्दर्भ में : 'राग दरबारी'** तेजेश्वर प्रसाद नोनियाँ, वर्द्धमान, पश्चिम बंगाल	194-196
41	**स्वाङ्ग पद का साङ्गोपाङ्गविश्लेशणपूर्वक "स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात" सूत्र का परिशीलन** विनोद कुमार झा, वेरावल, गुजरात	197-201
42	**रामपुर रियासत के मृदंगाचार्य पंडित एवं गुरू गया प्रसाद जी का सुप्रसिद्ध घराना** आकांक्षा कृष्ण, बरेली	202-207
43	**सफेदपोश अपराध (विशेषतः जमाखोरी, कालाबाजारी, एवं मिलावटखोरी)** राजेश बहुगुणा, देहरादून एवं सुमेर चन्द रवि, देहरादून,	208-218

Scanned with CamScanner

P: ISSN NO.: 2394-0344
E: ISSN NO.: 2455-0817
RNI No.UPBIL/2016/67980
VOL-3* ISSUE-7* (Part-1) October- 2018
Remarkina An Analisation

स्वाङ्ग पद का साङ्गोपाङ्गविश्लेशणपूर्वक "स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्" सूत्र का परिशीलन

प्रो. विनोद कुमार झा
अध्यक्ष,
व्याकरण विभाग,
श्री सोमनाथ संस्कृत युनिवर्सिटी,
वेरावल, गुजरात

सारांश

प्रस्तुत सूत्र से स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से 'ङीष्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र में पठित 'स्वाङ्ग' पद का 'अपना अङ्ग' अर्थ नहीं है, अपितु व्याकरण में यह एक पारिभाषिक शब्द है। वैयाकरणों ने इनको तीन प्रकार से परिभाषित किया है, जो इस प्रकार हैं– 1. अद्रवं मूर्तितमत् स्वाङ्गं प्राणिस्थमविकारजम् 2. अतत्स्थं तत्र दृष्टं च 3. तेन चेत्ततथायुतम्। 'स्वाङ्ग' के इन तीन प्रकार के परिभाषाओं को सोदाहरण प्रस्तुत कर इस सूत्र के दो उदाहरण भी प्रस्तुत किये गये हैं। साथ ही सूत्र में आने वाले पदों का पदकृत्य भी सोदाहरण प्रस्तुत करते हुए इस सूत्र के विभिन्न अपवाद सूत्रों को भी अर्थ व उदाहरण सहित दर्शाये गये हैं।

मुख्य शब्द : स्त्रीत्व, विवक्षा, उपधा, असंयोगोपध, अद्रव, मूर्तितमत, स्वाङ्ग, प्राणिस्थ, अविकारज, अतत्स्थ, तथायुत, अतिकेशी, चन्द्रमुखी, उपसर्जन आदि।

प्रस्तावना

प्रकृत सूत्र असंयोगोपध जो उपसर्जनसंज्ञक/उपसर्जन=गौण व स्वाङ्गवाची शब्द, तदन्त, अदन्त प्रातिपदिक से पर स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से 'ङीष्' प्रत्यय करता है। इस सूत्र के अध्ययन से स्वाङ्ग पद का उदाहरण, प्रत्युदाहरण सहित सम्पूर्ण ज्ञान होता है। प्रसिद्ध प्रयोग चन्द्रमुखी के ज्ञान के साथ चन्द्रमुखी का वैकल्पिक रूप चन्द्रमुखा का भी ज्ञान होता है।

सूत्र

(विधि सूत्र) स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्– 4/1/54

विभक्ति, वचन–निर्देश

स्वाङ्गात्– 5/1, च– अव्यय पद, उपसर्जनात्– 5/1, असंयोगोपधात्– 5/1।

सन्धि–विच्छेद

स्वाङ्गाच्च= स्वाङ्गात्+च ("स्तोः श्चुना श्चुः"[1]– त्<च)। चोपसर्जनात्= च+उपसर्जनात् ("आद्गुणः"[2]– अ+उ<ओ)। उपसर्जनादसंयोगोपधात्= उपसर्जनात्+असंयोगोपधात् ("झलां जशोऽन्ते"[3]– त्<द्)। असंयोगोपधात्= असंयोग+उपधात् ("आद्गुणः"– अ+उ<ओ)।

समास

संयोग उपधायां यस्य स संयोगोपधः (बहुव्रीहि समास)। न संयोगोपध इति असंयोगोपधः (नञ्तत्पुरुष समास), तस्मात् असंयोगोपधात्।

अधिकार

प्रत्ययः[4]– 3/1/1– प्रत्ययः। परश्च[5]– 3/1/2– परश्च। ङ्याप्प्रातिपदिकात्[6]– 4/1/1– प्रातिपदिकात्। स्त्रियाम्[7]– 4/1/3– स्त्रियाम्।

अनुवृत्ति

अजाद्यतष्टाप्[8]– 4/1/4– अतः। अन्यतो ङीष्[9]– 4/1/40– ङीष्। अस्वाङ्गपूर्वपदाद्वा[10]– 4/1/53– वा।

नोट

'असंयोगोपधात्' और 'उपसर्जनात्' ये दोनों पद 'स्वाङ्गात्' में अन्वित होते हैं। 'स्वाङ्गात्' एवं 'अतः' ये दोनों 'प्रातिपदिकात्' के विशेषण हैं, अतः इनसे "येन विधिस्तदन्तस्य"[11] परिभाषा सूत्र से तदन्तविधि हो जाती है।

वृत्ति

असंयोगोपधम् उपसर्जनं यत् स्वाङ्गं तदन्ताद् अदन्ताद् ङीष् वा स्यात् (स्त्रियाम्)। केशान् अतिक्रान्ता अतिकेशी, अतिकेशा। चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा। असंयोगोपधात् किम्? सुगुल्फा। उपसर्जनात् किम्? शिखा।

Scanned with CamScanner

अर्थ

असंयोगोपध (जिसकी उपधा में कोई संयोग न हो, ऐसे जो), उपसर्जनसंज्ञक/उपसर्जन=गौण व स्वाङ्गवाची शब्द, तदन्त, अदन्त प्रातिपदिक से पर स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से 'ङीष्' प्रत्यय होता है।

विशेष

सूत्र में पठित 'स्वाङ्ग' पद का 'अपना अङ्ग' अर्थ नहीं समझना चाहिए। व्याकरण में यह एक पारिभाषिक शब्द है। वैयाकरणों ने इनको तीन प्रकार से परिभाषित किया है, जो इस प्रकार हैं–

अद्रवं मूर्तिमत् स्वाङ्गं प्राणिस्थमविकारजम्[1]

जो पदार्थ द्रव (तरल) न हो, मूर्तिमान् (दृश्य) हो, विकार से उत्पन्न न हो तथा प्राणियों में स्थित रहता हो, वह 'स्वाङ्ग' कहलाता है। जैसे– प्राणी में स्थित केश, मुख, स्तन आदि। इन केशादिशब्दान्त अदन्त प्रातिपदिक से वैकल्पिक 'ङीष्' प्रत्यय होकर क्रमशः सुकेशी/सुकेशा, चन्द्रमुखी/चन्द्रमुखा, पीनस्तनी/पीनस्तना आदि रूप सम्पन्न होते हैं।

प्रत्युदाहरण

1. सुकफा (बहुत कफ वाली), सुस्वेदा (बहुत पसीने वाली) में 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' सूत्र से वैकल्पिक 'ङीष्' प्रत्यय न होकर अदन्तलक्षण वाला 'अजाद्यतष्टाप्' सूत्र से 'टाप्' प्रत्यय होता है। कारण कि कफ तथा स्वेद मूर्तिमान् (दृश्य), अविकारज तथा प्राणिस्थ होते हुए भी द्रव (तरल) पदार्थ होने से स्वाङ्गवाची नहीं है।
2. शोभनं ज्ञानं यस्याः सा सुज्ञाना (श्रेष्ठ ज्ञान वाली) में भी 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' सूत्र से वैकल्पिक 'ङीष्' प्रत्यय न होकर अदन्तलक्षण वाला 'अजाद्यतष्टाप्' सूत्र से 'टाप्' प्रत्यय होता है। कारण कि 'ज्ञान' अद्रव (अतरल) पदार्थ, अविकारज तथा प्राणिस्थ होते हुए भी मूर्तिमान् (दृश्य) न होने से स्वाङ्गवाची नहीं है।
3. सुन्दरं मुखं यस्याः शालायाः सा सुमुखा शाला (सुन्दर द्वार वाला घर) में भी 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' सूत्र से वैकल्पिक 'ङीष्' प्रत्यय न होकर अदन्तलक्षण वाला 'अजाद्यतष्टाप्' सूत्र से 'टाप्' प्रत्यय होता है। कारण कि यहाँ 'मुख' अद्रव (अतरल) पदार्थ, अविकारज तथा मूर्तिमान् (दृश्य) होते हुए भी प्राणिस्थ न होने से स्वाङ्गवाची नहीं है।
4. सुशोफा (बहुत सूजन वाली स्त्री) में भी 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' सूत्र से वैकल्पिक 'ङीष्' प्रत्यय न होकर अदन्तलक्षण वाला 'अजाद्यतष्टाप्' सूत्र से 'टाप्' प्रत्यय होता है। कारण कि 'शोफ' (शोथ, सूजन) अद्रव (अतरल) पदार्थ, मूर्तिमान् (दृश्य) तथा प्राणिस्थ होते हुए भी विकारज अर्थात् शारीरिक विकार रूप रोग से उत्पन्न होने से स्वाङ्गवाची नहीं है।

अतत्स्थं तत्र दृष्टं च[2]

प्राणियों के वे अंग जो अब प्राणियों में स्थित नहीं हैं, परन्तु पहले उनमें देखे गये हों, वे भी 'स्वाङ्ग' कहलाते हैं। जैसे– सुकेशी सुकेशा वा रथ्या (सुन्दर केशों वाली गली)। यहाँ केश अब प्राणियों में स्थित नहीं है, परन्तु वे प्राणियों के ही अंग थे, इसलिए 'स्वाङ्ग' कहे जाते हैं, अतः तदन्त अदन्त 'सुकेश' प्रातिपदिक से पर वैकल्पिक 'ङीष्' प्रत्यय होता है।

तेन चेत्तत्तथायुतम्[3]

जिस प्रकार कोई अंग प्राणी में स्थित होता है, उसी प्रकार यदि अन्यत्र किसी मूर्ति आदि में स्थित होता है, तो वह अंग भी 'स्वाङ्ग' कहलाता है। जैसे– सुस्तनी सुस्तना वा प्रतिमा (सुन्दर स्तनों वाली मूर्ति) यहाँ स्तन प्राणियों की तरह प्रतिमा में भी हैं, इसलिए ये भी 'स्वाङ्ग' कहे जाते हैं। अतः तदन्त अदन्त 'सुस्तन' प्रातिपदिक से पर वैकल्पिक 'ङीष्' प्रत्यय होता है।

1. न विद्यते द्रवो द्रवत्वं (तरलता) यस्मिंस्तद् अद्रवम्। मूर्तिः=अवयवसंयोगोऽस्यास्तीति मूर्तिमत्। प्राणिषु=जन्तुषु विद्यमानं प्राणिस्थम्। अविकारजम्=रोगादिविकाराऽजन्यं च यत् तत् प्रथमं स्वाङ्गमित्यर्थः।
2. तच्छब्देन प्राणी परामृश्यते। अतत्स्थं=अप्राणिस्थम्, तत्र=प्राणिनि दृष्टं यत् तदपि स्वाङ्गमित्यर्थः।
3. तेन चेत्तत्तथायुतमिति तृतीयं स्वाङ्गलक्षणमिति बोध्यम्। अत्र भाष्ये 'स्वाङ्गमप्राणिनोऽपि' इति शेषः पूरितः। तेन=प्राणिस्थेन स्तनाद्यङ्गाकृतिकावयवविशेषेण तत्=अप्राणिद्रव्यं प्रतिमादि तथा=प्राणिद्रव्यवद् युतं=सम्बद्धं चेद् भवति तदा तत्=स्तनाद्यङ्गाकृतिकम् अप्राणिनोऽपि स्वाङ्गमित्यर्थः। (बालमनोरमायाम्)

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने 'शब्दानुशासन' में इन तीनों लक्षणों को एक साथ बहुत सुन्दर ढंग से पद्यबद्ध किया है, जो इस प्रकार है–

"अविकारोऽद्रवं मूर्तं प्राणिस्थं स्वाङ्गमुच्यते।
च्युतं च प्राणिनस्तत्तद् निभं च प्रतिमादिषु।।"

(बृहद्–हैमवृत्ति, 2/4/38)

अतिकेशी– केशान् अतिक्रान्ता अतिकेशी=लम्बे केशों वाली स्त्री आदि अथवा केशों को जो लाङ्घ चुकी है अर्थात् केशों से अधिक लम्बी माला आदि।

केश शस्+अति "अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया" वार्तिक से 'केश शस्' द्वितीयान्त समर्थ सुँबन्त के साथ क्रान्तादि अर्थों के अन्तर्गत 'अतिक्रान्त' (पार कर चुका) अर्थ में विद्यमान 'अति' शब्द का प्रादि–समास हुआ।

केश शस्+अति "कृत्तद्धितसमासाश्च"[12] सूत्र द्वारा प्रादि–समाससंज्ञक 'केश शस्+अति' की 'प्रातिपदिक' संज्ञा हुई।

केश शस्+अति "सुँपो धातुप्रातिपदिकयोः"[13] सूत्र से 'केश शस्+अति' प्रातिपदिक के अवयवभूत 'शस्' सुँप् प्रत्यय का लुक् (अदर्शन) हुआ।

केश+अति "एकविभक्ति चाऽपूर्वनिपाते"[14] सूत्र द्वारा विग्रह में नियत=निश्चित विभक्ति द्वितीया विभक्ति में रहने वाला 'केश' शब्द की 'उपसर्जन' संज्ञा हुई।

केश+अति "प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्"[15] सूत्र से समासविधायक शास्त्र "अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया" में प्रथमाविभक्ति से निर्दिष्ट=उच्चरित

Scanned with CamScanner

P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-7* (Part-1) October- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 Remarking An Analisation

पदबोध्य 'अतिक्रान्त' अर्थ का वाचक 'अति' शब्द की उपसर्जन संज्ञा हुई।

अति+केश "उपसर्जनं पूर्वम्"[16] सूत्र से उपसर्जनसंज्ञक 'अति' शब्द का पूर्व में प्रयोग हुआ।

अतिकेश सम्मेलन

अतिकेश+ङीष् 'एकदेशविकृतमनन्यवत्' परिभाषा के अनुसार 'अतिकेश' शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा अक्षुण्ण रहने से "स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्" सूत्र से असंयोगोपध (जिसकी उपधा में संयुक्त वर्ण नहीं है, ऐसे), उपसर्जनसंज्ञक, स्वाङ्गवाची शब्द है– केश, तदन्त (वह केश शब्द है, अन्त में जिसके, ऐसे), अदन्त 'अतिकेश' प्रातिपदिक से पर स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से 'ङीष्'[0] प्रत्यय हुआ।

अतिकेश+ङीष् "हलन्त्यम्"[17] सूत्र से उपदेश अवस्था 'ङीष्' प्रत्यय में अन्त्य हल् 'ष्' की तथा "लशक्वतद्धिते"[18] सूत्र से तद्धितभिन्न 'ङीष्' प्रत्यय के आदि में स्थित कवर्ग– 'ङ्' की इत्संज्ञा और "तस्य लोपः"[19] सूत्र से इत्संज्ञक 'ष्' एवं 'ङ्' वर्णों का लोप हुआ।

अतिकेश+ई यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम्"[20] सूत्र से 'अतिकेश' शब्द से किये गये ङीष् (ई) प्रत्यय पर रहते, व्यपदेशिवद्भाव से 'अतिकेश' है आदि में 'अतिकेश' शब्दस्वरूप के तथा प्रकृति सहित वह शब्दस्वरूप भी 'अतिकेश' है, अतः 'अतिकेश' शब्दस्वरूप की 'अंग' संज्ञा हुई।

अतिकेश+ई "यचि भम्"[21] सूत्र से सर्वनामस्थानसंज्ञक से भिन्न 'सुँ' से लेकर 'कप्' प्रत्यय पर्यन्त के मध्य पठित व्यपदेशिवद्भाव से अजादि 'ई' (ङीष्) प्रत्यय परे रहते, पूर्व 'अतिकेश' शब्दसमुदाय की 'भ' संज्ञा हुई।

अतिकेश्+ई "अलोऽन्त्यस्य"[22] परिभाषा सूत्र की सहायता से "यस्येति च"[23] सूत्र से भसंज्ञक अंग 'अतिकेश' में अन्त्य अल् शकारोत्तर (श्+अ) अवर्ण (अ) का लोप हुआ, ईकार (ङीष्) पर रहते।

अतिकेशी वर्णसम्मेलन।

अतिकेशी+सुँ "ङ्याप्प्रातिपदिकात्", "प्रत्ययः", "परश्च" इन तीनों अधिकार सूत्रों के अन्तर्गत पठित "स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसांङ्योस्सुप्"[24] सूत्र से ङयन्त 'अतिकेशी' शब्द से पर एकत्व की विवक्षा में प्रथमा विभक्ति का एकवचनसंज्ञक 'सुँ' प्रत्यय हुआ।

अतिकेशी+सुँ (स्+उँ) "उपदेशेऽजनुनासिक इत्"[25] सूत्र से उपदेश अवस्था 'सुँ=स्+उँ' में अनुनासिक अच् 'उँ' की इत्संज्ञा एवं इत्संज्ञक 'उँ' का "तस्य लोपः" से लोप।

अतिकेशी+स् "यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम्" सूत्र द्वारा 'अतिकेशी' शब्द से किये गये 'सुँ' (स्) प्रत्यय पर रहते, व्यपदेशिवद्भाव से 'अतिकेशी' है, आदि में 'अतिकेशी' शब्दस्वरूप के तथा प्रकृति सहित वह शब्दस्वरूप भी 'अतिकेशी' है, अतः 'अतिकेशी' शब्दस्वरूप की 'अंग' संज्ञा हुई।

अतिकेश+स् "अपृक्त एकाल् प्रत्ययः"[26] सूत्र से एक अल् वाला 'स्' (सुँ) प्रत्यय की 'अपृक्त' संज्ञा हुई।

अतिकेशी+स् "हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुँतिस्यपृक्तं हल्"[27] सूत्र से ङयन्त अंग 'अतिकेशी' से परे स्थित 'सुँ' सम्बन्धी अपृक्तसंज्ञक हल् 'स्' का लोप हुआ।

अतिकेशी रूप सम्पन्न हुआ।

0'अतिकेश' में तत्पुरुष समास है और तत्पुरुषसमास में "परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः"[28] सूत्र के अनुसार परवल्लिङ्गता (उत्तर पद के समान लिङ्ग) होती है, परन्तु यहाँ गति–समास होने के कारण प्राप्त परवल्लिङ्गता का "द्विगु–प्राप्ताऽऽपन्नाऽलम्पूर्व–गतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः" वार्त्तिक से निषेध होकर विशेष्य के अनुसार लिङ्ग होता है, अतः स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से 'ङीष्' प्रत्यय होता है।

विशेष ध्यातव्य

1. 'प्र' आदि की 'गति' संज्ञा होने से प्रादि–समास, गति–समास के अन्तर्गत ही समाहित हो जाता है।
2. "प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्" सूत्र से 'उपसर्जन' संज्ञा करने का फल "उपसर्जनं पूर्वम्" सूत्र से उपसर्जन–संज्ञक का पूर्व में प्रयोग करना है तथा "एकविभक्ति चाऽपूर्वनिपाते" सूत्र से 'उपसर्जन' संज्ञा करने का फल पूर्व प्रयोग से भिन्न 'ह्रस्व' आदि करना है।

नोट

"स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्" सूत्र से असंयोगोपध (जिसकी उपधा में संयुक्त वर्ण नहीं है, ऐसे), उपसर्जनसंज्ञक, स्वाङ्गवाची जो 'केश' शब्द है, तदन्त, अदन्त 'अतिकेश' प्रातिपदिक से पर स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से 'ङीष्' प्रत्यय होता है, अतः जिस पक्ष में 'ङीष्' प्रत्यय नहीं होता है, उस पक्ष में अदन्तलक्षण वाला "अजाद्यतष्टाप्" सूत्र से 'टाप्' प्रत्यय, 'टाप्' में अनुबन्धलोप, सवर्णदीर्घ, 'सुँ' प्रत्यय, 'सुँ' प्रत्यय में अनुबन्धलोप, 'स्' की अपृक्त संज्ञा व अपृक्तसंज्ञक हल् 'स्' का लोप होकर 'अतिकेशा' रूप सम्पन्न होता है।

चन्द्रमुखी

चन्द्र इव मुखं यस्याः सा चन्द्रमुखी=चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखवाली स्त्री।

चन्द्र सुँ+मुख सुँ "अनेकमन्यपदार्थे"[29] सूत्र से अन्यपद के अर्थ में विद्यमान 'चन्द्र सुँ' समर्थ सुँबन्त का 'मुख सुँ' समर्थ सुँबन्त के साथ बहुव्रीहि समास हुआ।

चन्द्र सुँ+मुख सुँ "कृत्तद्धितसमासाश्च" सूत्र से बहुव्रीहि–समाससंज्ञक 'चन्द्र सुँ+मुख सुँ' की प्रातिपपदिक संज्ञा हुई।

चन्द्र सुँ+मुख सुँ "सुँपो धातुप्रातिपदिकयोः" सूत्र से 'चन्द्र सुँ+मुख सुँ' प्रातिपदिक के अवयवभूत दोनों 'सुँ' सुँप् प्रत्ययों का लुक् (अदर्शन) हुआ।

चन्द्रमुख सम्मेलन।

चन्द्रमुख सर्वोपसर्जनो बहुव्रीहिः (बहुव्रीहि समास के सभी पद उपसर्जन=गौण होते हैं।)' वचन के अनुसार 'मुख' शब्द उपसर्जन है।

चन्द्रमुख+ङीष् "एकदेशविकृतमनन्यवत्" परिभाषा के अनुसार 'चन्द्रमुख' शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा अक्षुण्ण रहने से "स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्" सूत्र से असंयोगोपध (जिसकी उपधा में संयुक्त वर्ण न हो, ऐसे),

Scanned with CamScanner

उपसर्जन, स्वाङ्गवाची शब्द है– मुख, तदन्त (वह 'मुख' शब्द है, अन्त में जिसके, ऐसे), अदन्त 'चन्द्रमुख' प्रातिपदिक से पर स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से 'ङीष्' प्रत्यय हुआ।

चन्द्रमुख+ङीष् "हलन्त्यम्" सूत्र से उपदेश अवस्था में 'ङीष्' प्रत्यय के अन्त्य हल् 'ष्' की तथा "लशक्वतद्धिते" सूत्र से तद्धितभिन्न 'ङीष्' प्रत्यय के आदि में स्थित कवर्ग– 'ङ्' की इत्संज्ञा और "तस्य लोपः" सूत्र से 'ष्' एवं 'ङ्' इत्संज्ञक वर्णों का लोप हुआ।

चन्द्रमुख+ई यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम्" सूत्र से 'चन्द्रमुख' शब्द से किये गये 'ङीष्' (ई) प्रत्यय पर रहते, व्यपदेशिवद्भाव से 'चन्द्रमुख' है, आदि में 'चन्द्रमुख' शब्दस्वरूप के तथा प्रकृति सहित वह शब्दस्वरूप भी 'चन्द्रमुख' है, अतः 'चन्द्रमुख' शब्दस्वरूप की 'अंग' संज्ञा हुई।

चन्द्रमुख+ई "यचि भम्" सूत्र से सर्वनामस्थानसंज्ञक से भिन्न 'सुँ' से लेकर 'कप्' प्रत्यय पर्यन्त के मध्य पठित व्यपदेशिवद्भाव से अजादि 'ई' (ङीष्) प्रत्यय परे रहते, पूर्व 'चन्द्रमुख' शब्दसमुदाय की 'भ' संज्ञा हुई।

चन्द्रमुख्+ई "अलोऽन्त्यस्य" परिभाषा सूत्र की सहायता से "यस्येति च" सूत्र से भसंज्ञक अंग 'चन्द्रमुख' में अन्त्य अल् खकारोत्तर (ख्+अ) अवर्ण (अ) का लोप हुआ, ईकार (ङीष्) पर रहते।

चन्द्रमुखी वर्णसम्मेलन।

चन्द्रमुख+सुँ "ङ्याप्प्रातिपदिकात्", "प्रत्ययः", "परश्च" इन तीनों अधिकार सूत्रों के अन्तर्गत पठित "स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसो –सांङ्योस्सुप्" सूत्र से ङ्यन्त 'चन्द्रमुखी' शब्द से पर एकत्व की विवक्षा में प्रथमा विभक्ति का एकवचनसंज्ञक 'सुँ' प्रत्यय हुआ।

चन्द्रमुख+सुँ "उपदेशेऽजनुनासिक इत्" सूत्र से उपदेश अवस्था 'सुँ=स्+उँ' में अनुनासिक अच् 'उँ' की इत्संज्ञा एवं इत्संज्ञक 'उँ' का "तस्य लोपः" से लोप।

चन्द्रमुख+सुँ "यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम्" सूत्र द्वारा 'चन्द्रमुखी' शब्द से किये गये 'सुँ' (स्) प्रत्यय पर रहते, व्यपदेशिवद्भाव से 'चन्द्रमुखी' है, आदि में 'चन्द्रमुखी' शब्दस्वरूप के तथा प्रकृति सहित वह शब्दस्वरूप भी 'चन्द्रमुखी' है, अतः 'चन्द्रमुखी' शब्दस्वरूप की 'अंग' संज्ञा हुई।

चन्द्रमुखी+स् "अपृक्त एकाल् प्रत्ययः" सूत्र से एक अल् वाला 'स्' (सुँ) प्रत्यय की 'अपृक्त' संज्ञा हुई।

चन्द्रमुखी+स "हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुँतिस्यपृक्तं हल्" सूत्र से ङ्यन्त अंग 'चन्द्रमुखी' से परे स्थित 'सुँ' सम्बन्धी अपृक्तसंज्ञक हल् 'स्' का लोप हुआ।

चन्द्रमुखी रूप सम्पन्न हुआ।

1. बहुव्रीहि समास में अन्यपदार्थ की प्रधानता होने से बहुव्रीहि समास के सभी समस्यमान पद उपसर्जन अर्थात् गौण होते हैं।

नोट

"स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्" सूत्र से असंयोगोपध (जिसकी उपधा में संयुक्त वर्ण नहीं है, ऐसे), उपसर्जनसंज्ञक, स्वाङ्गवाची जो 'मुख' शब्द है, तदन्त, अदन्त 'चन्द्रमुख' प्रातिपदिक से पर स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से 'ङीष्' प्रत्यय होता है, अतः जिस पक्ष में 'ङीष्' प्रत्यय नहीं होता है, उस पक्ष में अदन्त लक्षण वाला "अजाद्यतष्टाप्" सूत्र से 'टाप्' प्रत्यय, 'टाप्' में अनुबन्धलोप, सवर्णदीर्घ, 'सुँ' प्रत्यय, 'सुँ' प्रत्यय में अनुबन्धलोप, 'स्' की अपृक्त संज्ञा व अपृक्तसंज्ञक हल् 'स्' का लोप होकर 'चन्द्रमुखा' रूप सम्पन्न होता है।

प्रत्युदाहरण–

1. असंयोगोपधात् किम्? सुगुल्का– प्रकृत सूत्र में 'असंयोगोपधात्' पद का ग्रहण होने के कारण स्वाङ्गवाची, उपसर्जनसंज्ञक शब्द की उपधा में संयोग होने पर उस तदन्त, अदन्त प्रातिपदिक से पर 'ङीष्' प्रत्यय नहीं होता, अपितु अदन्तलक्षण वाला "अजाद्यतष्टाप्" सूत्र से 'टाप्' प्रत्यय होता है। जैसे– 'शोभनौ गुल्फौ यस्याः सा सुगुल्का' (सुन्दर गुल्फों=गिट्टों वाली)। 'सु गुल्फ+औ' इस अलौकिक विग्रह में "अनेकमन्यपदार्थे" सूत्र से बहुव्रीहिसमास, प्रातिपदिक संज्ञा व सुँब्लुक् होकर 'सुगुल्फ' प्रातिपदिक सम्पन्न होता है। यहाँ 'गुल्फ' इस स्वाङ्गवाची, उपसर्जनसंज्ञक शब्द की उपधा में 'ल्फ' का संयोग विद्यमान है, इसलिए प्रकृत सूत्र से तदन्त, अदन्त प्रातिपदिक 'सुगुल्फ' से वैकल्पिक 'ङीष्' नहीं हुआ। ऐसी स्थिति में "अजाद्यतष्टाप्" से 'टाप्' प्रत्यय, 'टाप्' में अनुबन्धलोप, सवर्णदीर्घ, 'सुँ' प्रत्यय, 'सुँ' प्रत्यय में अनुबन्धलोप, 'स्' की अपृक्त संज्ञा व अपृक्तसंज्ञक हल् 'स्' का लोप होकर 'सुगुल्फा' रूप सम्पन्न होता है। इसी तरह सुपार्श्वा, सुवक्त्रा, सुहस्ता आदि में वैकल्पिक 'ङीष्' प्रत्यय का अभाव समझना चाहिए।
2. उपसर्जनात् किम्? शिखा– यदि असंयोगोपध, स्वाङ्गवाची शब्द उपसर्जनसंज्ञक नहीं होगा, तो भी प्रकृत सूत्र से विकल्प से 'ङीष्' प्रत्यय नहीं होता है। जैसे– 'शिखा' (चोटी)। यहाँ 'शीङ् स्वप्ने' धातु से "शीङो ह्रस्वश्च" उणादिसूत्र से 'ख' प्रत्यय तथा धातु को ह्रस्व होकर 'शिख' रूप सिद्ध होता है। इसकी उपसर्जन संज्ञा नहीं हुई है, अतः उपसर्जनसंज्ञक न होने के कारण व्यपदेशिवद्भाव से तदन्त, अदन्त प्रातिपदिक 'शिख' होने पर भी वैकल्पिक 'ङीष्' नहीं हुआ। तब अदन्तलक्षण वाला "अजाद्यतष्टाप्" सूत्र से 'टाप्' प्रत्यय, 'टाप्' में अनुबन्धलोप, सवर्णदीर्घ, 'सुँ' प्रत्यय, 'सुँ' प्रत्यय में अनुबन्धलोप, 'स्' की अपृक्त संज्ञा व अपृक्तसंज्ञक हल् 'स्' का लोप होकर 'शिखा' रूप सम्पन्न होता है।

नोट

कुछ लोग 'सुशिखा' पद को प्रत्युदाहरण मानते हैं, क्योंकि उनका मानना है कि 'शोभना शिखा इति सुशिखा' यहाँ "कु–गति–प्रादयः"[30] सूत्र से प्रादि–तत्पुरुष–समास में प्रथमानिर्दिष्ट पदबोध्य होने के कारण 'सु' तो उपसर्जनसंज्ञक है, परन्तु 'शिखा' शब्द उपसर्जनसंज्ञक नहीं है, अतः इससे पर प्रकृत सूत्र से वैकल्पिक 'ङीष्' प्रत्यय नहीं होगा, परन्तु उन लोगों का यह कथन ठीक नहीं है, क्योंकि 'शिखा' शब्द अदन्त नहीं

Scanned with CamScanner

है अतः अदन्त न होने के कारण इससे विकल्प से 'ङीष्' प्रत्यय प्राप्त ही नहीं हो सकता है।

विशेष

यहाँ ध्यातव्य है कि "नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च" (4/1/55) सूत्र के अनुसार ओष्ठ, जङ्घा, दन्त, कर्ण और शृङ्ग इन पाँच संयोगोपधों के अन्त में आने पर निषेध की प्रवृत्ति नहीं होती है, अपितु विकल्प से 'ङीष्' प्रत्यय हो जाता है। जैसे– बिम्बौष्ठी/बिम्बौष्ठा, दीर्घजङ्घी/दीर्घजङ्घा, समदन्ती/समदन्ता, चारुकर्णी/चारुकर्णा, तीक्ष्णशृङ्गी/तीक्ष्णशृङ्गा।

"नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च" सूत्र में 'च' पद का ग्रहण होने के कारण अङ्ग, गात्र, कण्ठ और पुच्छ इन चार संयोगोपध पदों का भी ग्रहण हो जाता है, जिससे प्रकृत सूत्र से अङ्गादिशब्दान्त प्रातिपदिक से विकल्प से 'ङीष्' प्रत्यय हो जाता है। जैसे– मृद्वङ्गी/मृद्वङ्गा, तनुगात्री/तनुगात्रा, स्निग्धकण्ठी/स्निग्धकण्ठा, कल्याणपुच्छी/कल्याणपुच्छा।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध लेख का उद्देश्य यह है कि "स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्" सूत्र से सम्बद्ध विभक्ति, वचन–निर्देश, सूत्रगत सन्धि–विच्छेद, समास, विशेष, अधिकार का ज्ञान तथा सूत्र के अर्थ का तात्त्विक ज्ञान के साथ–साथ सूत्र में आने वाले 'स्वाङ्ग' शब्द का पारिभाषिक अर्थ, उदाहरण, प्रत्युदाहरण का ज्ञान साथ ही सूत्र के उदाहरण, प्रत्युदाहरण, सूत्र से सम्बद्ध अपवाद सूत्र, अपवाद सूत्रों का उदाहरण व विभिन्न कठिन शब्दों के व्युत्तिपरक अर्थ का तत्त्वतः ज्ञान होगा। उदाहरणों में प्रकृत सूत्र की प्रवृत्ति तथा प्रत्युदाहरणों में अप्रवृत्ति का स्पष्ट रूप से ज्ञान होगा।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध लेख का निष्कर्ष इस रूप में कहा जा सकता है कि सूत्र व सूत्रार्थ का तथ्यात्मक ज्ञान, पारिभाषिक शब्दों का सोदाहरण ज्ञान, उदाहरणों में सूत्रों की प्रवृत्ति तथा प्रत्युदाहरणों में अप्रवृत्ति का स्पष्ट रूप से ज्ञान होने के पश्चात् जनसामान्य तथा विशेष रूप से संस्कृत विषय में भी व्याकरणेतर छात्र–छात्राओं का संस्कृ–त व्याकरण शास्त्र के प्रति रुचि उत्पन्न होगी। साथ ही व्याकरण शास्त्र की सुस्पष्टता, तार्किकता, वैज्ञानिकता के ज्ञान के साथ 'व्याकरण शास्त्र कठिन शास्त्र है' इस प्रकार का भ्रमात्मक संदेह दूर होगा।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– 8/4/40*
2. *पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– 6/1/87*
3. *पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– 8/2/39*
4. *पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– 3/1/1*
5. *पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– 3/1/2*
6. *पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– 4/1/1*
7. *पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– 4/1/3*
8. *पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– 4/1/4*
9. *पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– 4/1/40*
10. *पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– 4/1/53*
11. *पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– 1/1/27*
12. *पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– 1/2/46*
13. *पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– 2/4/71*
14. *पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– 1/2/44*
15. *पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– 1/2/43*
16. *पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– 2/2/30*
17. *पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– 1/3/3*
18. *पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– 1/3/8*
19. *पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– 1/3/9*
20. *पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– 1/4/13*
21. *पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– 1/4/18*
22. *पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– 1/1/52*
23. *पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– 6/4/148*
24. *पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– 4/1/2*
25. *पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– 1/3/2*
26. *पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– 1/2/41*
27. *पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– 6/1/68*
28. *पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– 2/4/26*
29. *पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– 2/2/24*
30. *पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– 2/2/18*

Scanned with CamScanner

ISSN (P) : 2321-290X • (E) : 2349-980X
Vol 5 • Issue-2 • Oct, 2017

Srinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika

Indexed with Google Scholar

Impact Factor
SJIF = 5.689
GIF = 0.543
IIJIF = 6.038

UGC Listed Journal

The Research Series

Shrinkhala
शृंखला

A Multi-Disciplinary International Journal

Scanned with CamScanner

P: ISSN NO.: 2321-290X
E: ISSN NO.: 2349-980X
RNI : UPBIL/2013/55327
VOL-5* ISSUE-2* October- 2017
Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika

Contents

S. No.	Particulars	Page No.
1	**Impact of Demonetization on Indian Economy** Anu, Lucknow	01-06
2	**Economic Recession-(2008 to 2010) Its Impacts on Indian Economy** Pradeep Kumar Garg & Mayank Mohan, Modinagar, Uttar Pradesh	07-10
3	**Threats to One Horned Rhino at Kaziranga National Park, Assam** Mainu Devi, Assam	11-13
4	**Group Discussion: Strategies and Dynamics** Prabha Pant, Pantnagar	14-16
5	**Relevance of United Nations in Post Cold War Era** Krishan Kumar, Khanpur Kalan, Sonipat	17-21
6	**An Examination of Modern Western Empiricism** Manoj Kumar, Srinagar, Garhwal, Uttarakhand	22-26
7	**Role of Urbanization in Rural Development - A Geographical Study of Meerut District** Suresh Kumar, Baraut, Baghpat, U. P.	27-31
8	**Effects of Globalization on Family Relationship: A Case Study of Lucknow City** Vineeta Singh, Lucknow, U.P.	32-37
9	बालिका भ्रूण वध और असन्तुलित सामाजिक व्यवस्था अरविन्द कुमार वर्मा, सीकर, राजस्थान	38-43
10	बस्ती नगर की शैक्षणिक सेवाएँ एवं साक्षरता स्तर (दूर संवेदन तकनीक एवं भौगोलिक सूचना तंत्र (GIS) पर आधारित भौगोलिक विश्लेषण) अनुपमा त्रिपाठी, गोरखपुर	44-52
11	लोकतांत्रिक समाज की मूल समस्या, नियंत्रण का विस्तार एवं प्रभावी नियंत्रण संतोष कुमार राय, मुसाफिरखाना, अमेठी	53-58
12	आदिवासी एवं गैर आदिवासी विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन रेखा सालवी, उदयपुर, राजस्थान	59-61
13	राष्ट्रीय स्तर पर महिला नेतृत्व– एक अवलोकन विपिन कुमारी, करनाल	62-66
14	यम–संज्ञकायोगवाह–निरूपण और ञ–वर्णोच्चारणगत–रहस्यानावरण विक्रम जीत, बीकानेर, राजस्थान	67-70
15	"स्य–सिँच्–सीयुँट्–तासिँषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झन–ग्रह– दृशां वा चिण्वदिट् च" सूत्रार्थ–विचार विनोद कुमार झा, वैरावल, गुजरात	71-75

Scanned with CamScanner

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-2* October- 2017
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

"स्य–सिँच्–सीयुँट्–तासिँषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झन–ग्रह–दृशां वा चिण्वदिट् च" सूत्रार्थ–विचार

विनोद कुमार झा
अध्यक्ष,
व्याकरण विभाग,
श्री सोमनाथ संस्कृत युनिवर्सिटी,
वेरावल, गुजरात

सारांश

भाव अथवा कर्म अर्थ गम्यमान हो, तो उपदेश अवस्था में जो अच् तदन्त धातुओं को तथा हन्, ग्रह् एवं दृश् धातुओं को विकल्प से चिण्वत् अङ्ग कार्य होते हैं, स्य, सिँच्, सीयुँट् अथवा तासिँ पर रहते, साथ ही चिण्वत् पक्ष में 'स्य' आदि को 'इट्' आगम भी होता है। 'सन्नियोगशिष्टानां सह वा प्रवृत्तिः सह वा निवृत्तिः' इस परिभाषा के बल से "स्य–सिँच्–सीयुँट्–तासिँषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झन–ग्रह–दृशां वा चिण्वदिट् च" सूत्र से जिस पक्ष में 'चिण्वद्भाव' होता है, उसी पक्ष में 'इट्' आगम भी होता है। 'चिण्वद्भाव' से तात्पर्य है कि 'चिण्' परे रहते, जो–जो अङ्ग सम्बन्धी कार्य किये जाते हैं, वे सभी अङ्ग कार्य 'स्य' आदि प्रत्ययों के परे रहते भी हों। कारण कि चिणि इव चिण्वत् अर्थ में **"तत्र तस्येव"**[1] सूत्र से सप्तम्यन्त प्रातिपदिक 'चिण् ङि' से इव (सदृश) अर्थ में 'वतिँ' प्रत्यय हुआ है, अतः 'चिण्' पर रहते, जो यथायोग्य वृद्धि, युँक् का आगम, 'हन्' धातु के 'ह्' को घत्व और मितों को वैकल्पिक दीर्घ होते हैं, वे सभी कार्य यहाँ चिण्वद्भाव होने पर भी होते हैं। इन सभी कार्यों को सोदाहरण प्रस्तुत करते हुए प्रकृत सूत्र से सम्बद्ध अन्य सभी प्रासंगिक विषय–वस्तु को भी उदाहरण सहित विस्तार से प्रस्तुत शोध लेख में प्रस्तुत किया जायेगा।

मुख्य शब्द : चिण्वद्भाव, अंग–कार्य, सार्वधातुकसंज्ञा, आर्धधातुकसंज्ञा, सन्नियोगशिष्ट, प्रवृत्ति, सन्नन्त, आभीयकार्य, विघाती।

प्रस्तावना

"लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः" सूत्र में लकारों के तीन अर्थ बतायें गयें हैं– कर्त्ता, कर्म और भाव। सकर्मक धातुओं से लकार कर्त्ता एवं कर्म अर्थ में तथा अकर्मक धातुओं से लकार कर्त्ता एवं भाव अर्थ में होते हैं। कर्त्ता अर्थ में लकार होने पर कर्तृवाच्य होता है। कर्म तथा भाव अर्थ में लकार होने पर क्रमशः कर्मवाच्य व भावाच्य होता है। प्रकृत सूत्र से कर्मवाच्य व भावाच्य में बनने वाले रूपों के विषय में नियम किया जाता है। प्रकृत सूत्र विकल्प से चिण्वद्भाव तथा चिण्वद्भाव पक्ष में इडागम करता है।

सूत्र

753. (विधि सूत्र) स्य–सिँच्–सीयुँट्–तासिँषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झन–ग्रह–दृशां वा चिण्वदिट् च– 6/4/62

विभक्ति, वचन–निर्देश

स्य–सिँच्–सीयुँट्–तासिँषु– 7/3, भावकर्मणोः– 7/2, उपदेशे– 7/1, अज्झन–ग्रह–दृशाम्– 6/3, वा– अव्यय पद, चिण्वत्– अव्यय पद, इट्– 1/1, च– अव्यय पद।

सन्धि–विच्छेद

भावकर्मणोरुपदेशे– भावकर्मणोस्[षष्ठ] +उपदेशे (**"ससजुषो रुँः"**[2]– स्<रुँ, **"उपदेशेऽजनुनासिक इत्"**[3] एवं **"तस्य लोपः"**[4]– रुँ<र्। उपदेशेऽच्– उपदेशे+अच् (**"एङः पदान्तादति"**[5]– ए+अ<ए)। अज्झन– अच्[षष्ठ]+हन (**"झलां जशोऽन्ते"**[6]– च्+ज्, **"झयो होऽन्यतरस्याम्"**[7]– ह्+झ्)। दृशां वा– दृशाम्[षष्ठ]+वा (**"मोऽनुस्वारः"**[8]– म्<ं)। चिण्वदिट्– चिण्वत्[षष्ठ]+इट् (**"झलां जशोऽन्ते"**– त्+द्)।

समास– स्यश्च सिँच्च सीयुँट् च तासिँश्च इति स्यसिँच्सीयुँट्तासयः (इतरेतरयोगद्वन्द्व समास), तेषु स्यसिँच्सीयुँट्तासिँषु। भावश्च कर्म च इति भावकर्मणी (इतरेतरयोगद्वन्द्व समास), तयोः भावकर्मणोः। अच् च हनश्च ग्रहश्च दृ–श् च अज्झनग्रहदृशः (इतरेतरयोगद्वन्द्व समास), तेषाम् अज्झनग्रहदृशाम्।

विशेष

चिणि इव चिण्वत्। (**"तत्र तस्येव"**– 5/1/115 सूत्र से सप्तम्यन्त प्रातिपदिक 'चिण्+ङि' से इव (सदृश) अर्थ में वतिँ प्रत्यय)

Scanned with CamScanner

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-2* October- 2017
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

अधिकार– अङ्गस्य– 6/4/1– अङ्गस्य।

नोट

यहाँ 'अंग' का तात्पर्य 'धातु' से है।

वृत्ति

उपदेशे योऽच् तदन्तानां हनादीनां च णिणीव अङ्गकार्यं वा स्यात् स्यादिषु भावकर्मणोर्गम्यमानयोः, स्यादीनामिडागमश्च। चिण्वद्भावपक्षेऽयमिट्। चिण्वद्भावाद् वृद्धिः– भाविता, भविता। भाविष्यते, भविष्यते। भूयताम्। अभूयत। भूयेत। भाविषीष्ट, भविषीष्ट।

अर्थ

भाव अथवा कर्म अर्थ गम्यमान हो, तो उपदेश अवस्था में जो अच्, तदन्त धातुओं को तथा हन्, ग्रह् एवं दृश् धातुभ्यों को विकल्प से चिण्वत् अङ्ग कार्य होते हैं, स्य, सिँच्, सीयुँट् अथवा तासिँ पर रहते, साथ ही चिण्वत् पक्ष में 'स्य' आदि को 'इट्' आगम भी होता है।

नोट

'अच्' पद, 'अङ्गस्य' का विशेषण होने के कारण **"येन विधिस्तदन्तस्य"**[9] परिभाषा सूत्र से 'अच्' में तदन्तविधि होकर 'अजन्तानाम् अङ्गानाम्' ऐसा पद बन जाता है।

शंका

'भावि (णिजन्त धातु)+तास् त', 'भू+तास् त' आदि अवस्था में प्रकृत सूत्र से 'चिण्वद्भाव' व 'इट्' आगम तथा **"आर्धधातुकस्येड् वलादेः"**[10] सूत्र से 'इट्' आगम, दोनों की युगपत् प्राप्ति होती है, तो ऐसी स्थिति में **"विप्रतिषेधे परं कार्यम्"**[11] परिभाषा सूत्र के बल से परत्व के कारण वलादिलक्षण वाला 'इट्' आगम क्यों नहीं हो जाता है?

समाधान

ऐसा इसलिए नहीं होता है, क्योंकि वलादिलक्षण वाला 'इट्' आगम अनित्य और 'चिण्वद्भाव व इट्' नित्य होता है। जो कार्य विपक्ष के होने पर अथवा न होने पर दोनों ही स्थितियों में प्राप्त होता है, वह नित्य कहलाता है– **'कृताऽकृतप्रसङ्गी यो विधिः स नित्यः'**। यहाँ 'भावि (णिजन्त धातु)+तास् त', 'भू+तास् त' आदि अवस्था में वलादिलक्षण वाला 'इट्' आगम होने पर भी 'चिण्वद्भाव और इडागम' की प्राप्ति रहती ही है, परन्तु 'चिण्वद्भाव और इडागम' कर देने पर वलादि आर्धधातुक पर में न रहने से वलादिलक्षण वाला 'इट्' आगम की प्राप्ति नहीं हो सकती है, अतः 'चिण्वद्भाव और इडागम' कार्य नित्य हुआ और वलादिलक्षण वाला 'इट्' आगम अनित्य। नित्य एवं अनित्य कार्यों की युगपत् प्राप्ति होने पर हमेशा नित्य कार्य ही किया जाता है। इस प्रकार पहले 'चिण्वद्भाव और इडागम' हो जाते हैं और इसके अभाव पक्ष में वलादि आर्धधातुक को 'इट्' आगम होता है। जैसा कि महाभाष्यकार ने भी कहा है– **'इट् चाऽसिद्धस्तेन मे लुप्यते णिर्नित्यश्चायं वल्निमित्तो विधाती'** अर्थात् **अयम्**=चिण्वद्भाव के साथ होने वाला 'इट् आगम' **नित्यः**=नित्य है, इसलिये इसकी प्रवृत्ति में पर व अनित्य **वल्निमित्तः**=वलादिलक्षण वाला 'इट्' आगम **विघाती**=प्रवृत्ति के योग्य नहीं होता है।

विशेष

1. **'स्य–सिँच्–सीयुँट्–तासिँषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झन–ग्रह–दृशां वा चिण्वदिट् च'** सूत्र **'आर्धधातुके'**[12] सूत्र के अधिकार में पढ़ा गया है, इसलिए आशीर्लिङ् के आर्धधातुकसंज्ञक 'सीयुँट्' का ही प्रकृत सूत्र में ग्रहण होता है, न कि विधिलिङ् के सार्वधातुकसंज्ञक 'सीयुँट्' का।
2. णिणि इव चिण्वत् अर्थ में **'तत्र तस्येव'** सूत्र से सप्तम्यन्त प्रातिपदिक 'णिच् ङि' से इव (सदृश) अर्थ में 'वतिँ' प्रत्यय हुआ है, अतः 'चिण्' पर रहते, जो यथायोग्य वृद्धि, युँक् का आगम, 'हन्' धातु के 'ह्' को घत्व और मितों को वैकल्पिक दीर्घ होते हैं, वे सभी कार्य यहाँ चिण्वद्भाव होने पर भी होते हैं।
3. यहाँ ध्यातव्य है कि **'सन्नियोगशिष्टानां सह वा प्रवृत्तिः सह वा निवृत्तिः'** इस परिभाषा के बल से **'स्य–सिँच्–सीयुँट्–तासिँषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झन–ग्रह–दृशां वा चिण्वदिट् च'** सूत्र से जिस पक्ष में 'चिण्वद्भाव' होता है, उसी पक्ष में 'इट्' आगम भी होता है, परन्तु 'चिण्वद्भाव' अङ्ग को होता है और 'इट्' आगम 'स्य', 'सिँच्', 'सीयुँट्' एवं 'तासिँ' प्रत्ययों को होता है, क्योंकि महाभाष्य में कहा गया है कि– **'यावान् इण् नाम स सर्वं आर्धधातुकस्यैव भवति'** अर्थात् सभी प्रकार का 'इट्' आगम आर्धधातुक को ही होता है।
4. 'चिण्वद्भाव' से तात्पर्य है कि 'चिण्' परे रहते, जो–जो अङ्ग सम्बन्धी कार्य किये जाते हैं, वे सभी अङ्ग कार्य 'स्य' आदि प्रत्ययों के परे रहते भी हों। 'चिण्' णित् ('ण्' की इत्संज्ञा वाला) प्रत्यय है, अतः इसके परे रहते, निम्नलिखित चार अङ्गकार्य होते हैं। ये सभी कार्य भाववाच्य एवं कर्मवाच्य में 'स्य' आदि प्रत्ययों के परे रहते भी होते हैं–

क 'चिण्' परे रहते, **'अचो ञ्णिति'**[13] अथवा **'अत उपधायाः'**[14] सूत्र से णित् प्रत्यय निमित्तक वृद्धि होती है, यह कार्य भाववाच्य तथा कर्मवाच्य में 'चिण्वद्भाव' होने पर 'स्य' आदि प्रत्ययों के परे रहते भी किया जाता है। जैसे– भाविष्यते, ग्राहिष्यते आदि।

ख 'चिण्' प्रत्यय के परे रहते, **'आतो युँक् चिण्कृतोः'**[15] सूत्र से आदन्त धातुओं को 'युँक्' आगम होता है, वह कार्य भाववाच्य एवं कर्मवाच्य में 'स्य' आदि प्रत्ययों के परे रहते भी होता है। जैसे– दायिष्यते इत्यादि।

ग **'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु'**[16] सूत्र से 'चिण्' णित् प्रत्यय परे रहते, 'हन्' धातु के 'ह्' के स्थान पर कुत्व 'घ्' आदेश होता है, यह कार्य भाव और कर्म अर्थ में 'स्य' आदि प्रत्ययों के परे होने पर भी होता है। जैसे– घानिष्यते आदि।

घ **'चिण्णमुलोर्दीर्घोऽन्यतरस्याम्'**[17] सूत्र से 'चिण्परक' अथवा 'णमुल्परक' 'णि' पर रहते, मित्संज्ञक अंग की उपधा को विकल्प से दीर्घ आदेश होता है, वह कार्य भाव एवं कर्म अर्थ में 'स्य' आदि प्रत्ययों के परे होने पर भी होता है। जैसे– शामिष्यते, शमिष्यते इत्यादि।

महाभाष्यकार ने 'चिण्वद्भाव' के उपर्युक्त चारों प्रयोजनों को 'शालिनी' छन्द के माध्यम से बड़े सुन्दर ढंग से प्रतिपादित किया है–

Scanned with CamScanner

"चिण्वद् वृद्धिर्युक् च हन्तेश्च घत्वं दीर्घश्चोक्तो यो मितां वा चिणीति।

इट् चाऽसिद्धस्तेन मे लुप्यते णिर्नित्यश्चायं वल्निमित्तो विधाती।।" (महाभाष्य, 6/4/62)

अर्थात् 'चिण्' प्रत्यय के परे रहते यथायोग्य जैसे– वृद्धि, युगागम, 'हन्' धातु के 'ह' को कुत्व 'घ' एवं मित्संज्ञकों को विकल्प से दीर्घादेश होते हैं, उसी प्रकार से 'चिण्वद्भाव' में भी समझना चाहिए। इस 'चिण्वद्भाव' के साथ विधीयमान 'इट्' आगम कृत (किया गया) आभीय होने से होने वाले दूसरे आभीय कार्य "णेरनिटि"[18] सूत्र से 'णिलोप' की दृष्टि में असिद्ध होता है, अतः वलादि आर्धधातुक मिल जाने से "णेरनिटि" सूत्र से 'णिच्' के 'इ' का लोप हो जाता है। यह 'इट्' आगम नित्य एवं वलादि आर्धधातुक को होने वाला 'इट्' आगम अनित्य होता है। चिण्वद्भाव के साथ होने वाला 'इट् आगम' नित्य है, इसलिये इसकी प्रवृत्ति में पर व अनित्य वलादिलक्षण वाला 'इट्' आगम प्रवृत्ति के योग्य नहीं होता है।

5. प्रकृत सूत्र में 'उपदेश अवस्था में अजन्त धातु' इस प्रकार न कहकर 'उपदेश अवस्था में जो अच्, तदन्त धातु' ऐसा कहा गया है, क्योंकि ऐसा कहने से णिजन्त धातुओं से पर 'तासिं' आदि प्रत्यय करने पर 'चिण्वद्भाव और इडागम' हो जाते हैं। यदि 'उपदेश में अजन्त धातु' इस प्रकार कहते, तो 'भावि' आदि णिजन्त धातुओं का कहीं उपदेश न होने से इनका यहाँ ग्रहण नहीं हो सकता था, परन्तु अब 'उपदेश में जो अच्, तदन्त धातु' ऐसा कह देने से 'भावि' आदि णिजन्त धातुओं का निर्बाध रूप से ग्रहण हो जाता है, क्योंकि 'इ' (णिच्) प्रत्यय का "हेतुमति च"[19] सूत्र से उपदेश किया गया है, अतः तदन्त धातु से 'भावि' आदि णिजन्त धातु का ग्रहण हो जाता है।

भाविता (चिण्वद्भाव पक्ष में)–

भू सत्तायाम् ('भू' धातु 'सत्ता=होना' अर्थ में प्रयुक्त होती है।)– भ्वादिगण, परस्मैपदी, अकर्मक, सेट्।

भू+लुँट्

"अनद्यतने लुँट्"[20] सूत्र से 'अनद्यतन भविष्य काल की क्रिया' के वाचक अकर्मक 'भू' धातु से पर 'भाव' अर्थ में 'लुँट्' लकार हुआ।

भू+लुँट् (ल्+उँ+ट्)

"हलन्त्यम्" सूत्र से उपदेश अवस्था 'लुँट्' में अन्त्य हल् 'ट्' की तथा "उपदेशेऽजनुनासिक इत्" सूत्र से 'लुँ=ल्+उँ' में अनुनासिक अच् 'उँ' की इत्संज्ञा एवं इत्संज्ञक 'ट्' तथा 'उँ' का "तस्य लोपः" सूत्र सेलोप हुआ।

भू+ल्

"भावकर्मणोः"[21] सूत्र से भाववाचक 'ल्' (लुँट्) के स्थान पर 'आत्मनेपद' का विधान हुआ।

भू+त

प्रथम पुरुष एकत्व की विवक्षा में "तिप्तस्झिसिप्थस्थमिप्वस्मस्तातांझथासाथांध्वमिड्वहिमहिङ्"[22] सूत्र से 'ल्' (लुँट्) के स्थान में आत्मनेपदसंज्ञक 'त' प्रत्यय हुआ।

भू+डा

स्थानी के साथ समान संख्या वाले आदेश होने से "यथासंख्यमनुदेशः समानाम्"[23] परिभाषा सूत्र की सहायता से "लुँटः प्रथमस्य डारौरसः"[24] सूत्र से 'त' के स्थान पर क्रमशः 'डा' आदेश हुआ।

भू+डा (ड्+आ)

"चुटू"[25] सूत्र से 'डा' प्रत्यय के आदि में स्थित टवर्ग– 'ड्' की इत्संज्ञा एवं इत्संज्ञक 'ड्' का "तस्य लोपः" से लोप।

भू+आ

सार्वधातुक संज्ञा

स्थानिवद्भाव के कारण "तिङ्शित्सार्वधातुकम्"[26] सूत्र से तिङ्– 'आ' प्रत्यय की सार्वधातुक संज्ञा।

भू+तासिँ आ

"सार्वधातुके यक्"[27] सूत्र से सार्वधातुकसंज्ञक 'आ' प्रत्यय पर रहते, 'भू' धातु से पर 'यक्' प्रत्यय की प्राप्ति हुई, परन्तु उसको बाधकर "स्यतासी लृँलुँटोः"[28] सूत्र से 'तासिँ' प्रत्यय हुआ।

भू+तासिँ (स्+इँ) आ

"उपदेशेऽजनुनासिक इत्" सूत्र से उपदेश अवस्था में स्थित 'तासिँ' के सकारोत्तर (स्+इँ) अनुनासिक अच् 'इँ' की इत्संज्ञा एवं इत्संज्ञक 'इँ' का "तस्य लोपः" से लोप।

भू+तास् आ

अंग संज्ञा

"यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम्"[29] सूत्र से 'भू' धातु से विहित (किये गये) 'तासिँ' (तास्) प्रत्यय पर रहते, व्यपदेशिवद्भाव से 'भू' है, आदि में 'भू' शब्दस्वरूप के तथा प्रकृति सहित वह शब्दस्वरूप भी 'भू' है, अतः 'भू' शब्दस्वरूप की 'अंग' संज्ञा हुई।

भू+इट् तास् आ

चिण्वद्भाव

"स्य–सिँच्–सीयुँट्–तासिँषु भावकर्मणोरुप–देशेऽज्झन–ग्रह–दृशां वा चिण्वदिट् च" सूत्र से भाव अर्थ गम्यमान रहते, उपदेश अवस्था में अजन्त (अच्–'ऊ' अन्त वाली) 'भू' धातु को विकल्प से चिण्वद्भाव हुआ, 'तास्' प्रत्यय पर रहते तथा चिण्वद्भाव पक्ष में 'तास्' प्रत्यय को 'इट्' आगम भी हुआ। टित् (टकार की इत्संज्ञा वाला) 'इट्' आगम "आद्यन्तौ टकितौ"[30] परिभाषा सूत्र की सहायता से 'तास्' प्रत्यय का आद्यवयव बनकर उपस्थित हुआ।

भू+इट्/(इ) तास् आ

"हलन्त्यम्"[31] सूत्र से उपदेश अवस्था 'इट्' में अन्त्य हल् 'ट्' की इत्संज्ञा व इत्संज्ञक 'ट्' का "तस्य लोपः" से लोप।

भू+इ तास् आ

चिण्वद्भाव होने के कारण "यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते" परिभाषा से णित् 'तास्' (तासिँ) को होने वाला 'इट्' (इ) आगम 'तास्' प्रत्यय के गुण से गुणीभूत हो गया अर्थात् 'तास्' प्रत्यय में रहने वाला गुण णित्व से 'इट्' आगम भी गुणीभूत=णित्व गुण वाला हो गया, इसलिए 'णित्' प्रत्यय से 'इ तास्' का ग्रहण होता है।

भौ+इ तास् आ

चिण्वद्भाव होने के कारण "अचो ञ्णिति" सूत्र से 'इ तास्' को 'चिण्' की तरह णित् प्रत्यय मानकर

Scanned with CamScanner

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-2* October- 2017
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

उसके परे रहते, अजन्त अंग 'भू' के भकारोत्तर (भ्+ऊ) 'ऊ' को 'औ' वृद्धि आदेश हुआ।

भ् आव्+इ तास् आ

स्थानी के साथ समान संख्या वाले आदेश होने से **"यथासंख्यमनुदेशः समानाम्"** परिभाषा सूत्र की सहायता से **"एचोऽयवायावः"**[32] सूत्र से 'इ' अच् परे रहते, एच्– 'औ' के स्थान पर क्रमशः 'आव्' आदेश हुआ।

भ् आव्+इ तास्(आस्)आ

टि संज्ञा

"अचोऽन्त्यादि टि"[33] सूत्र से 'तास्' में अचों में अन्त्य अच् तकारोत्तरवर्ती (त्+आ) 'आ' है, वह 'आ' आदि में है, 'आस्' समुदाय के, अतः 'आस्' समुदाय की 'टि' संज्ञा हुई।

भ् आव्+इ तास्(आस्)आ

'डित्त्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः' अर्थात् डित्त्व के सामर्थ्य=बल से **"टेः"**[34] सूत्र से अभसंज्ञक (भसंज्ञक भिन्न) 'तास्' में टिसंज्ञक भाग 'आस्' का लोप हुआ।

भाविता

वर्णसम्मेलन।

विशेष

चिण्वद्भाव होने पर, चिण्वद्भाव पक्ष में **"स्य–सिँच्–सीयुँट्–तासिँषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झन–ग्रह–दृ–शां वा चिण्वदिट् च"** सूत्र से 'इट्' आगम भी होता है। चिण्वद्भाव के अभावपक्ष में यदि धातु सेट् है, तो नित्य ही 'इट्' आगम होता है। धातु वेट् है, तो विकल्प से 'इट्' आगम तथा धातु के अनिट् होने पर 'इट्' आगम का निषेध होता है, अतः चिण्वद्भाव के अभाव पक्ष में 'भू' धातु के सेट् होने के कारण 'भू तास् त' व 'भू स्य त' इस अवस्था में क्रमशः वलादि आर्धधातुक 'तास्' और 'स्य' को "आर्धधातुकस्येड् वलादेः" सूत्र से नित्य 'इट्' आगम होता है।

(लघु.) अकर्मकोऽप्युपसर्गवशात् सकर्मकः।

अनुभूयते आनन्दश्चैत्रेण (आनन्दः चैत्रेण) त्वया मया च।

अकर्मक धातु भी उपसर्ग के योग=सामीप्य के कारण सकर्मक हो जाती है। जैसे– 'सत्ता=होना' अर्थ वाली 'भू' धातु मूलतः अकर्मक होती है, किन्तु 'अनु' उपसर्गपूर्वक 'भू' धातु का प्रयोग होने पर सकर्मक हो जाती है, क्योंकि अब इसका अर्थ हो जाता है– 'अनुभव करना' या महसूस करना'। अकर्मक धातु से भाववाच्य में तथा सकर्मक धातु से कर्मवाच्य में लकार होते हैं। यहाँ 'अनु' उपसर्गपूर्वक 'भू' धातु का प्रयोग होने से सकर्मक हो जाने के कारण कर्मवाच्य में 'लँट्' आदि लकार होते हैं। लकार के कर्म अर्थ में आने के कारण 'कर्म' उक्त हो जाता है, जिससे उसमें प्रथमा विभक्ति होती है। कर्म के वचनों के अनुसार तङ् प्रत्ययों में वचन होते हैं। भाववाच्य में जहाँ लकार के केवल प्रथम पुरुष, एकवचन में ही रूप बनते हैं, वहीं कर्मवाच्य में कर्म के अनुसार लकार के सभी पुरुषों के तीनों वचनों में रूप बनते हैं। जैसे– तेन आनन्दोऽनुभूयते, ताभ्याम् आनन्दोऽनुभूयते, त्वया आनन्दोऽनुभूयते इत्यादि प्रयोगों में कर्म 'आनन्द' है, उसका प्रथमा विभक्ति, एकवचन में प्रयोग होने के कारण कर्मवाच्य की क्रिया 'अनुभूयते' में भी प्रथम पुरुष, एकवचन का प्रयोग किया गया है, परन्तु कर्म के द्विवचनान्त या बहुवचनान्त होने पर क्रिया में भी द्विवचन या बहुवचन का प्रयोग होता है। जैसे– मया सुखदुःखे अनुभूयेते (द्विवचनान्त), त्वया शीतवर्षातपादयोऽनुभूयन्ते (बहुवचनान्त) इत्यादि। इसी प्रकार कर्म के 'युष्मद्' या 'अस्मद्' शब्द होने पर क्रिया में मध्यम या उत्तम पुरुष का प्रयोग होता है। जैसे– तेन त्वम् अनुभूयसे, तेन युवाम् अनुभूयेथे, तेन यूयम् अनुभूयध्वे, तेन अहम् अनुभूये, तेन आवाम् अनुभूयावहे, तेन वयम् अनुभूयामहे आदि। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि कर्मवाच्य में कर्म हमेशा उक्त (कहा गया) होता है, तथा कर्त्ता अनुक्त (न कहा गया), इसलिए **"कर्तृकरणयोस्तृतीया"**[35] सूत्र से अनुक्त कर्त्ता में तृतीया विभक्ति होती है तथा कर्त्ता की संख्या के अनुसार वचन। भाववाच्य एवं कर्मवाच्य में यक्, चिण्वद्भाव+इडागम और आत्मनेपद आदि सभी कार्य समान रूप से होते हैं, परन्तु दोनों में अन्तर केवल इतना है कि भाववाच्य में क्रिया में केवल प्रथम पुरुष, एकवचन के रूप प्रयुक्त होते हैं, वहीं कर्मवाच्य में क्रिया में कर्म के अनुसार पुरुष एवं वचन प्रयोग किये जाते हैं।

नोट

'अनुभूयते' आदि में 'लँट्' लकार 'कर्म' अर्थ में किया गया है, 'कर्त्ता' में नहीं, इसलिए 'कर्म' के पुरुष और वचन का इस पर प्रभाव पड़ता है, न कि 'कर्त्ता' के पुरुष और वचन का। जैसे– तेन सुखम् अनुभूयते, ताभ्यां सुखदुःखे अनुभूयेते, तैः शीतवर्षातपादयोऽनुभूयन्ते, मया त्वम् अनुभूयसे, त्वया अहम् अनुभूये इत्यादि उदाहरणों में अनुभूयते, अनुभूयेते, अनुभूयन्ते, अनुभूयसे, अनुभूये आदि प्रयोगों में कर्म के अनुसार क्रिया में परिवर्तन हो रहा है, न कि 'कर्त्ता' के अनुसार।

कर्मवाच्य में सकर्मक 'अनु' उपसर्गपूर्वक 'भू सत्तायाम्' धातु के 'लँट्' लकार के रूप

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अनुभूयते	अनुभूयेते	अनुभूयन्ते
मध्यम पुरुष	अनुभूयसे	अनुभूयेथे	अनुभूयध्वे
उत्तम पुरुष	अनुभूये	अनुभूयावहे	अनुभूयामहे

आभीयत्वेनाऽसिद्धत्वाण्णिलोप

भाविता (चिण्वद्भाव पक्ष में)–

'भावि+इट् तास् आ' इस अवस्था में **"स्य–सिँच्–सीयुँट्–तासिँषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झन–ग्रह–दृशां वा चिण्वदिट् च"** (6/4/62) और **"णेरनिटि"** (6/4/51) इन दोनों सूत्रों से होने वाले कार्य आभीय कार्य हैं तथा **"असिद्धवदत्राभात्"** सूत्र के नियम से समान आश्रय वाले दो आभीय कार्यों में हो चुका आभीय कार्य, नहीं किये हुए दूसरे आभीय कार्य की दृष्टि में असिद्ध होता है, अतः इस नियम से **"स्य–सिँच्–सीयुँट्–तासिँषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झन–ग्रह–दृशां वा चिण्वदिट् च"** सूत्र से 'तास्' (तासिँ) को निमित्त मानकर चिण्वद्भाव व चिण्वद्भाव पक्ष में इडागम रूप आभीय कार्य, **"णेरनिटि"** सूत्र से उसी 'तास्' (तासिँ) को निमित्त मानकर नहीं किये हुए आभीय कार्य 'णिलोप' की दृष्टि में असिद्ध हो जाते हैं और इस प्रकार **"णेरनिटि"** को 'इ तास्' के स्थान पर केवल 'तास्' दिखाई देता है, इसलिए **"णेरनिटि"** सूत्र से अनिडादि (जिसको 'इट्' का आगम न हुआ हो, ऐसा)

Scanned with CamScanner

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika** VOL-5* ISSUE-2* October- 2017

आर्धधातुकसंज्ञक 'तास्' प्रत्यय परे रहते, 'भावि' के उकारोत्तर (व्+इ) 'इ' (णिच्) प्रत्यय का लोप हो जाता है। असिद्धवदत्राभात्

(6/4/22) से लेकर पाद की समाप्ति तक होने वाले कार्य, आभीय कार्य कहलाते हैं। किसी आश्रय को लेकर हो चुका आभीय कार्य, उसी आश्रय को लेकर होने वाले दूसरे आभीय कार्य की दृष्टि में असिद्ध होता है।

बोभूयते आदि में यङ्लुगन्त धातु के विषय में यह ध्यातव्य है कि केवल कर्तृवाच्य में ही 'यङ्लुगन्त' धातु से परस्मैपद का विधान होता है, भाववाच्य एवं कर्मवाच्य में 'भावकर्मणोः' सूत्र से आत्मनेपद का ही विधान किया जाता है।

विशेष

यहाँ एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि जो धातु मूल रूप में अकर्मक होती है, वह यङन्त अथवा यङ्लुगन्त धातु हो जाने पर भी अकर्मक ही रहती है। जैसे– 'भू' धातु मूलतः अकर्मक है, इसलिये यङन्त (बोभूय) एवं यङ्लुगन्त (बोभू) धातु भी अकर्मक ही है। 'कृ' धातु सकर्मक है, अतः यङन्त (चेक्रीय) और यङ्लुगन्त (चर्कृ) भी सकर्मक रहती है। यथा– तेन घटाश्चेक्रीय्यन्ते, तया घटाश्चर्क्रियन्ते।

उद्देश्य

प्रस्तुत शोध लेख का यह उद्देश्य है कि **'स्य–सिँच्–सीयुँट्–तासिँषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झन–ग्रह–दृशां वा चिण्वदिट् च'** सूत्र से सम्बद्ध विभक्ति, वचन–निर्देश, सूत्रगत सन्धि–विच्छेद, समास, विशेष, अधिकार का ज्ञान तथा सूत्र के अर्थ का तात्त्विक ज्ञान के साथ–साथ सूत्र के भावाच्य तथा कर्मवाच्य से सम्बद्ध रूपों का तत्त्वतः ज्ञान होगा। प्रकृत सूत्र से सम्बद्ध भावाच्य तथा कर्मवाच्य के रूपों को कण्ठस्थ करने आवश्यकता नहीं होगी। उदाहरणों में प्रकृत सूत्र की प्रवृत्ति तथा प्रत्युदाहरणों में अप्रवृत्ति का स्पष्ट रूप से ज्ञान होगा।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध लेख का निष्कर्ष इस रूप में कहा जा सकता है कि सूत्र व सूत्रार्थ का तथ्यात्मक ज्ञान, उदाहरणों में सूत्रों की प्रवृत्ति तथा प्रत्युदाहरणों में अप्रवृत्ति का स्पष्ट रूप से ज्ञान होने के पश्चात् जनसामान्य तथा विशेष रूप से संस्कृत विषय में भी व्याकरणेतर छात्र–छात्राओं का संस्कृत व्याकरण शास्त्र के प्रति रुचि उत्पन्न होगी। साथ ही 'व्याकरण शास्त्र कठिन शास्त्र है' इस प्रकार का भ्रमात्मक संशय दूर होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पा. अ. सूत्र– 6/1/116
2. पा. अ. सूत्र– 8/2/66
3. पा. अ. सूत्र– 1/3/2
4. पा. अ. सूत्र– 1/3/9
5. पा. अ. सूत्र– 6/1/109
6. पा. अ. सूत्र– 8/2/39
7. पा. अ. सूत्र– 8/4/62
8. पा. अ. सूत्र– 8/3/23
9. पा. अ. सूत्र– 1/1/72
10. पा. अ. सूत्र– 7/2/35
11. पा. अ. सूत्र– 1/4/2
12. पा. अ. सूत्र– 6/4/46
13. पा. अ. सूत्र–7/2/115
14. पा. अ. सूत्र– 7/2/116
15. पा. अ. सूत्र– 7/3/33
16. पा. अ. सूत्र– 7/3/54
17. पा. अ. सूत्र– 6/4/93
18. पा. अ. सूत्र– 6/4/51
19. पा. अ. सूत्र– 3/1/26
20. पा. अ. सूत्र– 3/3/15
21. पा. अ. सूत्र– 1/3/13
22. पा. अ. सूत्र– 3/4/38
23. पा. अ. सूत्र– 1/3/10
24. पा. अ. सूत्र– 2/4/85
25. पा. अ. सूत्र– 1/3/7
26. पा. अ. सूत्र– 3/4/113
27. पा. अ. सूत्र– 3/1/67
28. पा. अ. सूत्र– 3/1/33
29. पा. अ. सूत्र– 1/4/13
30. पा. अ. सूत्र– 1/1/46
31. पा. अ. सूत्र– 1/3/3
32. पा. अ. सूत्र– 6/1/78
33. पा. अ. सूत्र– 1/1/64
34. पा. अ. सूत्र– 6/4/155
35. पा. अ. सूत्र– 2/3/18

✦ पाणिनीय–अष्टाध्यायी–सूत्र

Scanned with CamScanner

ISSN (P) : 2321-290X * (E) 2349-980X Vol IV * Issue-III * November, 2016 RNI No. : UPBIL/2013/55327

Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika

Indexed with Google scholar

Impact Factor
SJIF =4.473
GIF = 0.543

The Research Series

शृंखला Shrinkhala

A Multi-Disciplinary International Journal

Scanned with CamScanner

P: ISSN NO.: 2321-290X
E: ISSN NO.: 2349-980X
RNI : UPBIL/2013/55327
VOL-IV* ISSUE-III*November-2016
Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika

25.	भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय महिलाओं के संदर्भ में राजपाल मीणा, अलवर,राजस्थान	120-121
26.	विश्व में आतंकवादी गतिविधियाँ एक सामाजिक परिदृश्य (विशेष संदर्भ भारत) के० एच० वासनिक, अमरावती, महाराष्ट्र	122-127
27.	एम.एफ.हुसेन ने विभिन्न रूपों को ग्रिड संरचना और विभिन्न श्रृंखलाओं के माध्यम से उभारा–एम. एफ.हुसेन का अध्ययन कमलेश व्यास, जयपुर, राजस्थान	128-134
28.	पाली भाषा और साहित्य : एक अनुसंधानिक विमर्श आर० के० राय, खत्रीवाड़ा, सिकन्द्राबाद	135-137
29.	तिनके की मदद से आग जलाते – लीलाधर जगूड़ी वाई.सी.यादव, बुलन्दशहर	138-139
30	भूमण्डलीकरण के माध्यम (संचार) में स्त्री की जगह शैलजा, रूधौली, बस्ती	140-143
31	मूल अधिकारों कर्त्तव्यों एवं प्रजातान्त्रिक मूल्यों को जन–जन तक पहुँचाने में समकालीन कथा साहित्य की भूमिका पुष्पा यादव, कानपुर	144-146
32	साम संहिता में 'ब्राह्मण,उपनिषद तथा अरण्यक' सुनीता सिंह, रामपुर मनिहारान,सहारनपुर,उ0 प्र0	147-150
33	यशपाल–स्त्री चिंतन अंजू सिंह, खांद्रा ,मिदनापुर	151-155
34	समाज की सच्ची तस्वीर उद्घाटित करता उपन्यास 'आधा गाँव' संजीत, रोहतक हरियाणा	156-157
35	वल्लभाचार्य और पुष्टि मार्ग अनिल कलसी, होशियारपुर, पंजाब	158-161
36	कालीदास की नारी पात्रों का ललित कला में योगदान किरन, बांगरमऊ, उन्नाव	162-164
37	भाववाच्य में संस्कृत–व्याकरण–सम्मत पुरुष व वचन की व्यवस्था विनोद कुमार झा, वेरावल, गुजरात	165-168

Scanned with CamScanner

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-IV* ISSUE-III*November-2016
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

भाववाच्य में संस्कृत–व्याकरण–सम्मत पुरुष व वचन की व्यवस्था

विनोद कुमार झा
अध्यक्ष,
व्याकरण विभाग,
श्री सोमनाथ संस्कृत यूनिवर्सिटी,
वेरावल, गुजरात

सारांश

"लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः" सूत्र में लकारों के तीन अर्थ बताये गये हैं– कर्त्ता, कर्म और भाव। सकर्मक धातुओं से लकार कर्त्ता एवं कर्म अर्थ में तथा अकर्मक धातुओं से लकार कर्त्ता एवं भाव अर्थ में होते हैं। कर्त्ता अर्थ में लकार होने पर कर्तृवाच्य होता है। कर्तृवाच्य में कर्ता में प्रथमा विभक्ति, कर्म में द्वितीया विभक्ति और क्रिया में कर्ता के अनुसार पुरुष व वचन होते हैं। कर्मवाच्य में कर्म में प्रथमा विभक्ति, कर्ता में तृतीया विभक्ति और क्रिया में कर्म के अनुसार पुरुष व वचन होते हैं। भाववाच्य में कर्म नहीं होता है, अतः इस वाच्य में कर्ता में तृतीया विभक्ति और क्रिया में पुरुषों में केवल प्रथम पुरुष व वचनों में केवल एकवचन होते हैं। प्रस्तुत शोध लेख में भाववाच्य के नियम को सूत्रनिर्देशपूर्वक तथा उदाहरण प्रस्तुतिपूर्वक विस्तार से बताया जायेगा।

मुख्य शब्द : आत्मनेपद, परस्मैपद, युष्मद्, अस्मद्, उपपद, समानाधिकरण, स्थानिन्, अपि, शेष।

प्रस्तावना

"लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः"[1] सूत्र में लकारों के तीन अर्थ बताये गये हैं– कर्त्ता, कर्म और भाव। सकर्मक धातुओं से लकार कर्त्ता एवं कर्म अर्थ में तथा अकर्मक धातुओं से लकार कर्त्ता एवं भाव अर्थ में निहित होते हैं। 'भाव' तथा 'कर्म' अर्थ में लकार होने पर 'आत्मनेपद' का विधान होता है। भाववाच्य ('भाव' अर्थ) में तथा कर्मवाच्य ('कर्म' अर्थ) में परस्मैपद होता ही नहीं है। फिर चाहे धातु परस्मैपदी हो, आत्मनेपदी हो या उभयपदी हो, इन दोनों वाच्यों में प्रत्येक धातु से पर लकार के स्थान में 'आत्मनेपद' का ही विधान किया जाता है, परस्मैपद का नहीं। 'भाव' तथा 'कर्म' अर्थ में धातु से 'यक्' विकरण होता है। 'यक्' में अन्त्य हल् ककार की इत्संज्ञा व लोप हो जाता है तथा 'य' सस्वर शेष रहता है। 'यक्' में ककार अनुबन्ध जोड़ने का प्रयोजन है– गुण, वृद्धि का निषेध और सम्प्रसारण करना। जैसे– 'भूयते' में 'यक्' के कित् होने के कारण 'भू' को "सार्वधातुकाऽऽर्धधातुकयोः"[2] सूत्र से प्राप्त आर्धधातुकगुण का निषेध हो जाता है। इसी प्रकार 'मृज्यते' में 'यक्' के कित् होने के कारण "मृजेर्वृद्धिः"[3] सूत्र से प्राप्त वृद्धि का निषेध हो जाता है। 'इज्यते' प्रयोग में 'यक्' के कित् होने के कारण 'यज' धातु के यण्– 'य' को "वचिस्वपियजादीनां किति"[4] सूत्र से सम्प्रसारण 'इ' हो जाता है।

भावः क्रिया, सा च भावार्थकलकारेणाऽनूद्यते। युष्मदस्मद्भ्यां सामानाधिकरण्याऽभावात् प्रथमः पुरुषः। तिङ्वाच्यक्रियाया अद्रव्यरूपत्वेन द्वित्वाद्यप्रतीतेर्न द्विवचनादि। किन्त्वेकवचनमेवोत्सर्गतः। त्वया मयाऽन्यैश्च भूयते। बनूवे।

अर्थात् भाव का अर्थ क्रिया है। 'भाव' अर्थ में लकार करने पर भावार्थक लकार के द्वारा धात्वर्थ क्रिया का ही अनुवाद (फिर से कहना) किया जाता है। 'भाव' अर्थ में लकार करने पर 'युष्मद्' तथा 'अस्मद्' शब्द का अर्थ कर्ता/कर्म के साथ लकार का अर्थ 'भाव' का समानाधिकरण (समान अर्थ) नहीं होने से भावार्थक लकार के स्थान में केवल 'प्रथम पुरुष' ही होता है। तिङ् (लकार) का अर्थ क्रिया, द्रव्य रूप नहीं होती है। उसका कोई मूर्त रूप नहीं होता है। अतः क्रिया से संख्या की प्रतीति नहीं होने से द्वित्वादि की विवक्षा भी नहीं होती है, और न ही द्विवचन आदि होते हैं। एकवचन अनैमित्तिक (बिना निमित्त वाला) है। एकवचन एकत्व संख्या की अपेक्षा नहीं रखता है, इसलिए एकत्व की अविवक्षा में भी स्वभावतः एकवचन हो जाता है। जैसे–त्वया, मया अन्यैश्च भूयते (तुझ से, मुझ से या अन्य लोगों से हुआ जाता है)।

भावः क्रिया, सा च भावार्थकलकारेणाऽनूद्यते– भाववाच्य में अर्थात् भाव अर्थ में लकार करने पर लकार के द्वाराधात्वर्थ=भाव=क्रिया का ही अनुवाद किया जाता

Scanned with CamScanner

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-IV* ISSUE-III*November-2016
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

है अर्थात् धातु, जिस क्रिया को कहती है, उसी क्रिया को लकार भी कहता है। अब प्रश्न उठता है कि जो क्रिया, धातु के द्वारा कही जाती है, उसी क्रिया को भावार्थक लकार के द्वारा कहने की क्या आवश्यकता? इसका उत्तर यह है कि स्पष्ट प्रतिपत्ति = ज्ञान के लिए धात्वर्थ = क्रिया का लकार अनुवाद (दोहराना) करता है।

युष्मदस्मद्भ्यां सामानाधिकरण्याऽभावात् प्रथमः पुरुष–भाव अर्थ में लकार करने पर 'युष्मद्' तथा 'अस्मद्' शब्द के साथ लकार के अर्थ का समानाधिकरण (एक अर्थ) नहीं होने से भावार्थक लकार के स्थान में हमेशा 'प्रथम पुरुष' ही होता है।

अभिप्राय यह है कि 'युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः' सूत्र से लकार के साथ समान= एक अधिकरण=अर्थ वाला 'युष्मद्' शब्द यानि कि लकार का जो अधिकरण=अर्थ है, वही अधिकरण= अर्थ 'युष्मद्' शब्द का भी हो तो, 'युष्मद्' शब्द उपपद (समीप) में उच्चरित रूप से विद्यमान न हो अथवा विद्यमान हो, दोनों ही परिस्थितियों में 'मध्यम पुरुष' होता है।

'युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः'[5] सूत्र का शब्दार्थ– समानम्=एकम् अधिकरणं=वाच्यं (अर्थः) यस्य तत् समानाधिकरणम् (बहुव्रीहि समास), तस्मिन् समानाधिकरणे अर्थात् लकार के साथ समान=एक है, अधिकरण=अर्थ जिसका ऐसे युष्मदि=युष्मद्–शब्दे– युष्मद् शब्द के उपपदे=उपपद (समीप) में उच्चरित होने पर स्थानिनि=विद्यमान न रहने पर या अपि=विद्यमान रहने पर मध्यमः=मध्यम पुरुष होता है। यथा–

सकर्मक (गम्) धातु से 'कर्ता' अर्थ में लकार

मध्यम पुरुष
त्वं ग्रामं गच्छसि (तुम गाँव जाते हो)।

'युष्मद्' शब्द (त्वम्) का अर्थ =कर्ता

त्वं ग्रामं गच्छसि इस उदाहरण वाक्य में 'युष्मद्' (त्वम्) शब्द का अर्थ= कर्त्ता है एवं 'गच्छसि' में 'लँट् लकार' का भी अर्थ = कर्त्ता है, अतः 'गच्छसि' में

गच्छसि में 'लँट् लकार' का भी अर्थ=कर्ता

'युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः' सूत्र से 'गम' धातु से 'मध्यम पुरुष' हुआ है।

सकर्मक (दृश्) धातु से 'कर्म' अर्थ में लकार

मध्यम पुरुष
मया त्वं दृश्यसे (मेरे द्वारा तुम देखे जाते हो)।

'युष्मद्' शब्द (त्वम्) का अर्थ=कर्म

मया त्वं दृश्यसे इस उदाहरण वाक्य में 'युष्मद्' (त्वम्) शब्द का अर्थ=कर्म है एवं 'दृश्यसे' में 'लँट् लकार' का भी अर्थ=कर्म है, अतः 'दृश्यसे' में 'युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः' सूत्र से 'दृश' धातु से 'मध्यम पुरुष' हुआ है।

दृश्य से में 'लँट् लकार' का भी अर्थ=कर्म

'अस्मद्युत्तमः'[6] सूत्र का शब्दार्थ– समानम्=एकम् अधिकरणं=वाच्यं यस्य तत् समानाधिकरणम् (बहुव्रीहि समास), तस्मिन् समानाधिकरणे अर्थात् लकार के साथ समान=एक है, अधिकरण=अर्थ जिसका ऐसे अस्मदि= अस्मद्–शब्दे– अस्मद् शब्द के उपपदे=उपपद (समीप) में उच्चरित होने पर स्थानिनि=विद्यमान न रहने पर या अपि=विद्यमान रहने पर उत्तमः=उत्तम पुरुष होता है।

विशेष

'अस्मद्युत्तमः' सूत्र में 'युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः' सूत्र से उपपदे, समानाधिकरणे, स्थानिनि तथा अपि इन चारों पदों की अनुवृत्ति आती है।

'अस्मद्युत्तमः' सूत्र से लकार के साथ समान=एक अधिकरण=अर्थ वाला 'अस्मद्' शब्द यानि कि लकार का जो अधिकरण=अर्थ है, वही अधिकरण=अर्थ 'अस्मद्' शब्द का भी हो तो, 'अस्मद्' शब्द उपपद (समीप) में उच्चरित रूप से विद्यमान न हो अथवा विद्यमान हो, दोनों ही परिस्थितियों में 'उत्तम पुरुष' होता है।

सकर्मक (गम्) धातु से 'कर्ता' अर्थ में लकार

उत्तम पुरुष
अहं ग्रामं गच्छामि (मैं गाँव जाता हूँ)।

'अस्मद्' शब्द (अहम्) का अर्थ=कर्ता

अहं ग्रामं गच्छामि इस उदाहरण वाक्य में 'अस्मद्' (अहम्) शब्द का अर्थ=कर्ता है एवं 'गच्छामि' में

गच्छामि में 'लँट् लकार' का भी अर्थ=कर्ता

'लँट् लकार' का भी अर्थ=कर्ता है, अतः 'गच्छामि' में 'अस्मद्युत्तमः' सूत्र से 'गम्' धातु से 'उत्तम पुरुष' हुआ है।

Scanned with CamScanner

P: ISSN NO.: 2321-290X
E: ISSN NO.: 2349-980X
RNI : UPBIL/2013/55327
VOL-IV* ISSUE-III*November-2016
Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika

सकर्मक (दृश्) धातु से 'कर्म' अर्थ में लकार

उत्तम पुरुष
त्वया अहं दृश्ये (तुम्हारे द्वारा मैं देखा जाता हूँ)।

'अस्मद्' शब्द (अहम्) का अर्थ=कर्म

त्वया अहं दृश्ये इस उदाहरण वाक्य में 'अस्मद्' (अहम्) शब्द का अर्थ=कर्म है एवं 'दृश्ये' में 'लँट् लकार' का भी अर्थ=कर्म है, अतः 'दृश्ये' में "अस्मद्युत्तमः" सूत्र से 'दृश्' धातु से 'उत्तम पुरुष' हुआ है।

"शेषे प्रथमः" सूत्र से लकार के साथ समान=एक अधिकरण = अर्थ वाला शेष अर्थात् 'युष्मद्' एवं 'अस्मद्' शब्द से भिन्न 'तद्' आदि शब्द यानि कि लकार का जो अधिकरण=अर्थ है, वहीं अधिकरण = अर्थ 'तद्' आदि शब्दों का भी हो तो, 'तद्' आदि शब्द उपपद (समीप) में उच्चरित रूप से विद्यमान न हो अथवा विद्यमान हो, दोनों ही परिस्थितियों में 'प्रथम पुरुष' होता है।

"शेषे प्रथमः" सूत्र का शब्दार्थ–समानम् = एकम्

दृश्ये में 'लँट् लकार' का भी अर्थ=कर्म

अधिकरणं=वाच्यं यस्य तत् समानाधिकरणम् (बहुव्रीहि समास), तस्मिन् समानाधिकरणे अर्थात् लकार के साथ समान=एक है, अधिकरण=अर्थ जिसका ऐसे शेषे = शेष–शब्दे– 'युष्मद्' एवं 'अस्मद्' शब्द से भिन्न 'तद्' आदि शब्द के उपपदे=उपपद (समीप) में उच्चरित होने पर स्थानिनि=विद्यमान न रहने पर या अपि=विद्यमान रहने पर प्रथम=प्रथम पुरुष होता है।

विशेष

1. "शेषे प्रथमः" सूत्र में "युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः" सूत्र से उपपदे, समानाधिकरणे, स्थानिनि तथा अपि इन चारों पदों की अनुवृत्ति आती है।
2. उक्तादन्यः शेषः– अर्थात् कहे गये 'युष्मद्' एवं 'अस्मद्' शब्द से भिन्न 'तद्' आदि शब्द।

अकर्मक (भू) धातु से 'कर्ता' अर्थ में लकार

प्रथम पुरुष
सः/सा/तत् भवति (वह होता/होती है)।

'तद्' शब्द (सः/सा/तत्) का अर्थ=कर्ता

सः/सा/तत् भवति इस उदाहरण वाक्य में 'युष्मद्' एवं 'अस्मद्' शब्द से भिन्न 'तद्' (सः/सा/तत्) शब्द का अर्थ=कर्ता है एवं 'भवति' में 'लँट् लकार' का भी

भवति में 'लँट् लकार' का भी अर्थ=कर्ता

अर्थ=कर्तृता है, अतः 'भवति' में "शेषे प्रथमः" सूत्र से 'भू' धातु से 'प्रथम पुरुष' हुआ है।

अकर्मक (भू) धातु से 'भाव' अर्थ में लकार

प्रथम पुरुष
अन्यैः/त्वया/मया भूयते (अन्य लोगों के द्वारा, तुम्हारे द्वारा अथवा मेरे द्वारा हुआ जाता है)।

'अन्य' शब्द (अन्यैः), 'युष्मद्' शब्द (त्वया), 'अस्मद्' शब्द (मया) का अर्थ= कर्त्ता

अन्यैः/त्वया/मया* भूयते इस उदाहरण वाक्य में अन्य, युष्मद् या अस्मद् (अन्यैः, त्वया अथवा मया) शब्द का अर्थ=कर्त्ता है तथा 'भूयते' में 'लँट् लकार' का अर्थ=भाव है, अतः लकार का अर्थ 'भाव' के साथ अन्य, युष्मद् या अस्मद् शब्द का अर्थ 'कर्तृता' का समानाधिकरण अर्थात् समान=एक अधिकरण=अर्थ नहीं होने से 'भूयते' में "शेषे प्रथमः" सूत्र से 'भू' धातु से 'प्रथम पुरुष' हुआ है।

*अन्यैः/त्वया/मया भूयते इस वाक्य में 'भूयते' में 'भू' धातु से 'भाव' अर्थ में 'लँट्' लकार होने से 'लँट्' लकार के द्वारा 'भाव' अर्थ उक्त अर्थात् कहा गया है न कि अन्य, युष्मद् या अस्मद् शब्द का अर्थ– कर्ता। अतः 'कर्ता' अर्थ के अनुक्त होने से अर्थात् न कहे गये होने से अनुक्त कर्तृवाचक शब्द अन्य, युष्मद् तथा अस्मद् में "कर्तृकरणयोस्तृतीया" सूत्र से 'तृतीया' विभक्ति होती है।

भूयते में 'लँट् लकार' का अर्थ=भाव

तिङ्वाच्यक्रियाया अद्रव्यरूपत्वेन द्वित्वाद्यप्रतीतेर्न द्विवचनादि– 'लिङ्गसंख्यान्वयित्वं द्रव्यत्वम्' अर्थात् लिङ्ग एवं संख्या से जो युक्त होता है, वह द्रव्य कहलाता है। तिङ् (लकार)[&] का वाच्य क्रिया द्रव्य रूप नहीं होती है। उसका कोई मूर्त रूप नहीं होता है। अतः क्रिया से संख्या की प्रतीति नहीं होने से द्वित्वादि की विवक्षा भी नहीं होती है, और न ही द्विवचन आदि होते हैं।

& क. परमलघुमञ्जूषायां शक्ति–निरूपणस्य प्रारम्भे– 'तत्र ऋषिभिः स्थानिनां कल्पिता अर्थाः कण्ठरवेणैवोक्ताः। आदेशानां तु स्थान्यर्थाभिधानसमर्थस्यैवादेशतेति' अर्थात् स्थानी और आदेश में पाणिनि आदि ऋषियों ने लकार आदि स्थानियों के कल्पित अर्थ कण्ठस्वर से ही कह दिये हैं, यानि कि स्थानियों के अर्थों का निर्देश स्वयं उच्चारणपूर्वक बतला दिया गया है। किन्तु आदेशों में आदेशता तो स्थानियों के कल्पित अर्थ को कहने में समर्थ होने से ही आती है,

Scanned with CamScanner

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-IV* ISSUE-III* November-2016
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

क्योंकि आदेश वही कहलाता है, जो स्थानी के अर्थ को कहने में समर्थ हो।

ख. परमलघुमञ्जूषायां लकारार्थ–निर्णयस्य प्रारम्भे– 'उच्चारित एव शब्दोऽर्थप्रत्यायको नानुच्चारितः' इति भाष्यात् अर्थात् 'उच्चारित शब्द ही अर्थ का बोधक होता है अनुच्चारित शब्द नहीं' इस भाष्य वचन से वास्तव में लकार के स्थान में होने वाले आदेश 'तिङ्' के ही कर्ता, कर्म व भाव अर्थ होते हैं। जहाँ कहीं लकार के कर्ता, कर्म व भाव अर्थ बताये गये हैं, वहाँ आदेश 'तिङ्' के अर्थ का स्थानी लकार में आरोप समझना चाहिये।

किन्त्वेकवचनमेवोत्सर्गतः– भाष्यकार के अनुसार एकवचन अनैमित्तिक (बिना निमित्त वाला) तथा औत्सर्गिक (स्वाभाविक) होता है। वह एकत्व संख्या की अपेक्षा नही रखता है, इसलिए एकत्व की अविवक्षा में भी एकवचन हो जाता है। साथ ही द्वित्वादि के अभाव में भी एकवचन सर्वत्र निर्बाध रूप से हो सकता है।

विशेष

1. भाववाच्य में धातु का वाच्य=अर्थ भाव (क्रिया) लकार के द्वारा कहा जाता है, युष्मद् या अस्मद् शब्द का अर्थ कर्ता अथवा कर्म नहीं, अतः इस वाच्य में मध्यम एवं उत्तम पुरुष का प्रयोग नहीं होता है। केवल "शेषे प्रथमः" सूत्र से प्रथम पुरुष का ही प्रयोग होता है।
2. भाववाच्य में लकार के द्वारा धात्वर्थ क्रिया का अनुवाद किया जाता है। क्रिया के द्रव्य रूप में न होने से उसका कोई मूर्त्त रूप नहीं होता है, इसलिए उसमें संख्या की प्रतीति भी नहीं होती है। संख्या का प्रयोग न होने से द्विवचन एवं बहुवचन का प्रयोग भी नहीं होता है। भाष्यकार ने एकवचन को अनैमित्तिक तथा औत्सर्गिक माना है, इसलिए वह एकत्व संख्या की अपेक्षा नहीं करता है और द्वित्वादि के अभाव में भी निर्बाध रूप से सभी जगह हो जाता है।[$] इसलिए भाववाच्य में केवल एकवचन का ही प्रयोग होता है।

$"द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने" (1/4/22) सूत्र का योगविभाग करके 'एकवचनम्', 'द्वयोर्द्विवचनम्' और बाद में 'बहुषु बहुवचनम्' इस प्रकार पाठ करके एकवचन को निर्निमित्तक (बिना निमित्त वाला) सिद्ध किया जाता है। 'एकवचनम्'– प्रत्येक शब्द से एकवचन होता है। 'द्वयोर्द्विवचनम्'– द्वित्व की विवक्षा में द्विवचन होता है। 'बहुषु बहुवचनम्'– बहुत्व की विवक्षा में बहुवचन होता है। इस प्रकार संख्या के अभाव में एकवचन का औत्सर्गिकत्व=स्वाभाविकत्व सिद्ध हो जाता है।[8]

उद्देश्य

प्रस्तुत शोध लेख का उद्देश्य यह है कि भाववाच्य का जो नियम सर्वविदित है कि कर्ता में तृतीया विभक्ति और क्रिया में प्रथम पुरुष व एकवचन होते हैं, इसके पीछे जो वास्तविक कारण है, जो संस्कृत–व्याकरण–सम्मत कारण है, उसका सूत्रनिर्देशपूर्वक तथा उदाहरण प्रस्तुतिपूर्वक विस्तार से तत्त्वतः पाठकों को ज्ञान हो। पाठकों को न केवल भाववाच्य का अपितु प्रसंगतः इस शोध लेख में कर्तृवाच्य तथा कर्मवाच्य का भी यथातथ्य व यथाविस्तृत चर्चा होने से भाववाच्य के साथ–साथ इन दोनों वाच्यों का भी तथ्यात्मक ज्ञान होगा।

निष्कर्ष

उपर्युक्त शोध लेख के निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि भाववाच्य के साथ–साथ कर्तृवाच्य तथा कर्मवाच्य का भी यथातथ्य ज्ञान होने से छात्र–छात्राओं में संस्कृत–व्याकरण के प्रति रुचि के साथ–साथ श्रद्धा व विश्वास का भाव उत्पन्न होगा। वाच्यों का तत्त्वतः ज्ञान होने से किस धातु से भाववाच्य, किस धातु से कर्तृवाच्य तथा कर्मवाच्य के वाक्य बन सकते हैं, इसका सप्रमाण, तर्कयुक्त, सन्देह रहित और सन्तुष्टिपरक ज्ञान होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पा. अ. सूत्र#– 3/4/69
2. पा. अ. सूत्र– 7/3/84
3. पा. अ. सूत्र– 7/2/114
4. पा. अ. सूत्र– 6/1/15
5. पा. अ. सूत्र– 1/4/104
6. पा. अ. सूत्र– 1/4/106
7. पा. अ. सूत्र– 1/4/107
8. वैयाकरणभूषणसार के भैमीभाष्य से उद्धृत।

\# पाणिनीय–अष्टाध्यायी–सूत्रपाठः

Scanned with CamScanner

ISSN (P) : 2321-290X * (E) 2349-980X
Vol III * Issue-2 * October-2015
द्विभाषीय - मासिक
RNI No. : UPBIL/2013/55327

Srinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika

Indexed with Google scholar

Impact Factor
SJIF = 4.106

The Research Series

द्विभाषीय - मासिक

Shrinkhala
श्रृंखला

A Multi-Disciplinary International Journal

Scanned with CamScanner

P: ISSN NO.: 2321-290X
E: ISSN NO.: 2349-980X
RNI : UPBIL/2013/55327
Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika
Vol-III * Issue-II* October-2015

Contents

S. No.	Particulars	Page No.
1	**Consumers Buying Behavior and Regional Differences with Reference to Dairy Industry in Haryana** Rajiv Kumar & Rupa, Haryana	01-04
2	**Dimensions of Infrastructural Growth in India** Balwant Singh, Auraiya	05-08
3	**Sustainable Natural Resource Management by Users Group** S.P.Sinha, Jharkhand	09-11
4	**Study of Economic Characters of Samia Ricini Donovan Reared on *Mikania Micrantha* and *Ricinus Communis* in Combination** Mainu Devi, Assam	12-15
5	**A Study on Employee`s Productivity in Indian Banking Sector** Parmod K. Aggarwal & Chitvan Khosla, Patiala	16-22
6	**Macro-Economic Indicators in Indian Economy** Priti Devi, Panipat	23-26
7	**A Study on Indian Tourist Spots Preferred by Today's Youth** Sarjoo Patel, Vadodara	27-29
8	**Textile Processing: Process, Environmental Impact and Advance Methods of Treatment** Vijay Kumar, Jaipur	30-34
9	**Comparason of Different Categories of Maturitye Leveles of Students** Lakhwinder Singh, Ludhiana	35-37
10	**Heritage Conservation–Concept and Dimensions** Sambodh Goswami, Rajasthan	38-41
11	**डॉ0 अम्बेडकर–समाज सुधारक** राजेश कुमार सिंह, फैजाबाद	42-43
12	**वैश्वीकरण और असुरक्षा–राजनैतिक, आर्थिक व भौतिक चुनौतियाँ** मालती वर्मा, कानपुर	44-46
13	**गीता में निहित शैक्षिक तत्वों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण** हेमलता दादाणी, राजस्थान	47-49
14	**अधिकार : विभिन्न आयाम एवं उनके प्रभाव** ललिता दादरवाल, जयपुर	50-52
15	**कस्तूरबा गाँधी बालिका आवासीय विद्यालयों का अध्ययन** प्रेम चन्द गुर्जर एवं दीपा स्वामी, जोधपुर	53-56
16	**ओजोन परत का बढ़ता क्षरण** मंजुलता कश्यप, जाँजगीर, (छ.ग.)	57-59
17	**समकालीन कथा साहित्य में महिला उपन्यासकारों के सामाजिक चिंतन का केन्द्रीय विषय : एक तुलनात्मक अध्ययन** वर्षा रानी, भदोही	60-62
18	**समकालीन साहित्य में धूमिल** शगुन सिक्का, श्री आनंदपुर साहिब	63-64
19	**मानव मूल्य: एक चर्चा** सतपाल, हरियाणा	65-67
20	**"आदिरन्त्येन सहेता" सूत्रार्थ–विचार** विनोद कुमार झा, गुजरात	68-71
21	**अभिराजराजेन्द्रमिश्र के कथा–साहित्य में दलित विमर्श** अशोक कंवर शेखावत, झालावाड़	72-74
22	**संस्कृत साहित्य में गीतिकाव्य** निशि कान्त पाठक, झारखण्ड	75-76

Scanned with CamScanner

P: ISSN NO.: 2321-290X
E: ISSN NO.: 2349-980X
RNI : UPBIL/2013/55327
Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika
Vol-III* Issue-II* October-2015

"आदिरन्त्येन सहेता" सूत्रार्थ–विचार

विनोद कुमार झा
अध्यक्ष,
व्याकरण संकाय,
श्री सोमनाथ संस्कृत युनिवर्सिटी,
वेरावल, गुजरात

सारांश

'आदिरन्त्येन सहेता' एक 'प्रत्याहार' निर्माण करने वाला सूत्र है। प्रस्तुत शोध–लेख में प्रकृत सूत्र का विभक्ति, वचन–निर्देश, सन्धि–विच्छेद, सूत्र में होने वाली अनुवृत्ति, विभक्ति–विपरिणाम, सूत्र की संस्कृत–वृत्ति, हिन्दी–अर्थ, आदि व अन्त शब्द की परिभाषा, प्रश्न–उत्तर तथा शंका–समाधान के माध्यम से सूत्र का गूढ़ार्थ ज्ञान, सोदाहरण प्रत्याहार निर्माण विधि, व्याकरण शास्त्र के सूत्र व वार्तिकों में प्रयुक्त प्रत्याहारों की सूची, किस इत्संज्ञक वर्ण से कितने प्रत्याहार बनते हैं, उनकी सूची प्रस्तुत की गई है। व्याकरणशास्त्र में प्रयुक्त होने वाले सभी प्रत्याहारों का दो श्लोकों में संग्रह इस प्रकार किया गया है। यथा–

"डणटञ्वाल् स्मृतो ह्येकः चत्वारश्च चमान्मताः।
शलाभ्यां षड् यरात्पञ्च याद् द्वौ च कणतस्त्रयः।।
केषाञ्चिच्च मते रोऽपि प्रत्याहारोऽपरो मतः।
लस्थाऽऽर्णेन वाऽऽच्छन्त्यनुनासिकबलादिह।।"

मुख्य शब्द : प्रत्याहार, आदि, अन्त, इत्संज्ञक, सर्वनाम, संज्ञा।

प्रस्तावना

('प्रत्याहार' निर्माण करने वाला सूत्र)

(संज्ञा सूत्र) आदिरन्त्येन सहेता – 1/1/70

विभक्ति, वचन–निर्देश – आदिः– 1/1, अन्त्येन– 3/1, सह– अव्यय पद, इता– 3/1।

सन्धि–विच्छेद–आदिरन्त्येन = आदिस्+अन्त्येन ("ससजुषो रुः"[1]– स्<रुँ, "उपदेशेऽजनुनासिक इत्"[2] एवं "तस्य लोपः"[3]– रुँ<र्), **सहेता** = सह+इता ("आद्गुणः"[4]– अ+इ<ए)।

अनुवृत्ति– स्वं रूपं शब्दस्याशब्दसंज्ञा– 1/1/67– स्वम्।

विभक्ति–विपरिणाम – 'स्वम्' प्रथमान्त पद का षष्ठ्यन्त पद 'स्वस्य' में विपरिणाम = परिवर्तन हो जाता है।

वृत्ति– अन्त्येनेता सहित आदिर्मध्यगानां स्वस्य च संज्ञा स्यात्। यथाऽण् इति 'अ, इ, उ' वर्णानां सञ्ज्ञा। एवमक्, अच्, हल्, अल् इत्यादयः।

अर्थ– अन्त्य' (अन्तिम) इत्संज्ञक वर्ण से युक्त जो आदि, वह मध्य के वर्णों का और स्व (अपने स्वरूप) के अन्तर्गत आने वाले वर्णों का बोधक (बतलाने वाला) होता है। जैसे– 'अण्' प्रत्याहार 'अ, इ, उ' वर्णों का बोधक है, इसी प्रकार अच्, अल् एवं हल् आदि प्रत्याहार अपने स्वरूप के अन्तर्गत आने वाले वर्णों तथा मध्य वर्णों के बोधक होते हैं।

1. पूर्व रहते हुए, जिससे पर नहीं होता है, वह अन्त कहलाता है– 'यस्मात्परं नास्ति पूर्वमस्ति सोऽन्तः'।
2. पर रहते हुए, जिससे पूर्व नहीं होता है, वह आदि कहलाता है– 'यस्मात्पूर्वं नास्ति परमस्ति स आदिः'।

प्रश्न– "आदिरन्त्येन सहेता" सूत्र में अनुवृत्त 'स्वम्' पद से अन्त्य (अन्तिम) वर्ण का ग्रहण क्यों नहीं होता है?

उत्तर– 'स्व' सर्वनाम पद है। सर्वनाम पद सर्वदा प्रधान का ही बोध कराते हैं, अप्रधान का नहीं। "आदिरन्त्येन सहेता" सूत्र में प्रधान 'आदि' है, 'अन्त्य' नहीं। 'अन्त्य' अप्रधान है, क्योंकि **"सहयुक्तेऽप्रधाने"**[5] सूत्र से 'अप्रधान' में ही तृतीया विभक्ति होती है, इसलिए यहाँ 'अन्त्येन' में 'सह' के योग में तृतीया हुई है, अतः स्पष्ट है कि 'स्व' सर्वनाम पद से प्रधान 'आदि' का ही ग्रहण होता है, अप्रधान 'अन्त्य' का नहीं।

शंका– 'अण्', 'इक्' आदि प्रत्याहारों में आदि और मध्यस्थ वर्ण संज्ञी होते हैं, तो 'इक्' प्रत्याहार में अन्त्य वर्ण 'क्' का ग्रहण न होने पर भी बीच में पढ़े गये 'ण्' का तो ग्रहण होना चाहिए, परन्तु ऐसा नहीं होता, क्यों?

समाधान– आचार्य पाणिनि के अनुसार मध्यस्थ वर्ण यदि इत्संज्ञक हो, तो उनका प्रत्याहार में 'संज्ञी' के रूप में ग्रहण नहीं होता है, क्योंकि अगर इत्संज्ञक वर्ण भी संज्ञी होते, तो 'अच्' प्रत्याहार में 'क्' का भी ग्रहण होता, क्योंकि यह भी

Scanned with CamScanner

P: ISSN NO.: 2321-290X
E: ISSN NO.: 2349-980X
RNI : UPBIL/2013/55327
Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika
Vol-III* Issue-II* October-2015

अन्त्य वर्ण है। 'अच्' प्रत्याहार में 'क्' का ग्रहण होने पर 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' सूत्र के 'अनुनासिक' पद का 'ङ' (अच्) के परे रहते सकारोत्तर (स्+ङ) 'इ' को **'इको यणचि'** सूत्र से 'य्' यणादेश, तथा **'लोपो व्योर्वलि'** सूत्र से 'य्' का लोप होकर 'अनुनासक' ऐसा प्रयोग बनता, परन्तु आचार्य को यह पद अभीष्ट नहीं है, अतः 'अनुनासिक' आदि प्रयोगों से स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य मध्यवर्ती इत्संज्ञक वर्णों को 'संज्ञी' के रूप में ग्रहण नहीं करते हैं।

प्रत्याहार– 'प्रत्याह्रियन्ते = संक्षिप्यन्ते वर्णा अनेनेति प्रत्याहार' अर्थात् जिसमें वर्णों को संक्षेप में कहा जाता है, वह प्रत्याहार कहलाता है। 'अण्' आदि संज्ञाओं को प्राचीन आचार्य 'प्रत्याहार' कहते थे, अतः पाणिनीय व्याकरण शास्त्र में भी 'आदिरन्त्येन सहेता' सूत्र से की जाने वाली संज्ञा 'प्रत्याहार' शब्द से व्यवहृत होती है।

प्रत्याहार निर्माण विधि

अच् (प्रत्याहार)	
अन्त्य (अन्तिम) इत्	च्।
तत्सहित (अन्त्य इत् सहित) आदि	अच्।
स्वयं (अपने स्वरूप) के वर्ण	अ, च्।
'स्वयं' पद से प्रत्याहारगत केवल 'आदि' वर्ण का ही ग्रहण होता है।	अ, ~~च्~~।
प्रत्याहार में इत्संज्ञक वर्णों का ग्रहण नहीं होता है।	इ, उ, ~~ण्~~, ऋ, ऌ, ~~क्~~, ए, ओ, ~~ङ्~~, ऐ, औ।
मध्यस्थ (मध्य में स्थित) वर्ण	इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ।
स्वयम्	1+
मध्यस्थ वर्ण	8
कुल	9

'आदिरन्त्येन सहेता' सूत्र में पठित 'आदि' शब्द माहेश्वर सूत्रों में आदि की अपेक्षा नहीं रखता है, अपितु माहेश्वर सूत्रों में बुद्धि से कल्पित समुदाय की अपेक्षा रखता है। यथा– 'इक्' प्रत्याहार।

इक् (प्रत्याहार)	
अन्त्य (अन्तिम) इत्	क्।
तत्सहित (अन्त्य इत् सहित) आदि	इक्।
स्वयं (अपने स्वरूप) के वर्ण	इ, क्।
'स्वयं' पद से प्रत्याहारगत केवल 'आदि' वर्ण का ही ग्रहण होता है।	इ, ~~क्~~।
प्रत्याहार में इत्संज्ञक वर्णों का ग्रहण नहीं होता है।	उ, ~~ण्~~, ऋ, ऌ।
मध्यस्थ (मध्य में स्थित) वर्ण	उ, ऋ, ऌ।
स्वयम्	1+
मध्यस्थ वर्ण	3
कुल	4

नोट– 'इक्' प्रत्याहार का 'इ' माहेश्वर सूत्रों की अपेक्षा 'आदि' न होकर बुद्धि से कल्पित एवं 'आदि' तथा 'अन्त' शब्दों से आक्षिप्त समुदाय = इ, उ, ण्, ऋ, ऌ, क् की अपेक्षा 'आदि' है।

इसी प्रकार **'आदिरन्त्येन सहेता'** सूत्र में पठित 'अन्त' शब्द माहेश्वर सूत्रों में अन्त की अपेक्षा नहीं रखता है, अपितु माहेश्वर सूत्रों में बुद्धि से कल्पित समुदाय की अपेक्षा रखता है। यथा– 'ऐ' प्रत्याहार।

ऐ (प्रत्याहार)	
अन्त्य (अन्तिम) इत्	ञ्।
तत्सहित (अन्त्य इत् सहित) आदि	ऐ।
स्वयं (अपने स्वरूप) के वर्ण	ऐ, ञ्।
'स्वयं' पद से प्रत्याहारगत केवल 'आदि' वर्ण का ही ग्रहण होता है।	ऐ, ~~ञ्~~।
प्रत्याहार में इत्संज्ञक वर्णों का ग्रहण नहीं होता है।	ट, ~~ण्~~।
मध्यस्थ (मध्य में स्थित) वर्ण	ल्।
स्वयम्	1+
मध्यस्थ वर्ण	1
कुल	2

नोट– 'ऐ' प्रत्याहार का 'ञ्' माहेश्वर सूत्रों की अपेक्षा 'अन्त' न होकर बुद्धि से कल्पित एवं 'आदि' तथा 'अन्त' शब्दों से आक्षिप्त समुदाय= ऐ, ट, ल, ञ् की अपेक्षा 'अन्त' है।

विशेष– 'अइउण्' आदि सूत्रों से अनेक प्रत्याहार बनाये जा सकते हैं, परन्तु व्याकरणशास्त्र में मुख्यतः जिन प्रत्याहारों का व्यवहार होता है, वे संख्या में चवालीस (44) हैं। इनमें से भी कुछ आचार्य 'ऐ' प्रत्याहार को स्वीकार नहीं करते हैं, अतः इनके मत में प्रत्याहारों की संख्या तैंतालीस (43) ही रह जाती है। इनमें आचार्य पाणिनि ने इकतालीस (41) प्रत्याहारों का प्रयोग सूत्रों में किया है, तथा अवशिष्ट दो प्रत्याहारों में 'अण्' प्रत्याहार का उणादि सूत्र तथा 'चय्' प्रत्याहार का वार्तिक में पाठ है।

Scanned with CamScanner

P: ISSN NO.: 2321-290X
E: ISSN NO.: 2349-980X
RNI : UPBIL/2013/55327
Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika
Vol-III* Issue-II* October-2015

व्याकरण शास्त्र में प्रयुक्त प्रत्याहारों की सूची

क्रम	प्रत्याहार	प्रत्याहार – वर्ण	सूत्र
1	अण्	अ, इ, उ (3)	उरण् रपरः
2	अक्	अ, इ, उ, ऋ, ऌ (5)	अकः सवर्णे दीर्घः
3	इक्	इ, उ, ऋ, ऌ (4)	इको यणचि
4	उक्	उ, ऋ, ऌ (3)	उगितश्च
5	एङ्	ए, ओ (2)	एङः पदान्तादति
6	अच्	अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ (9)	इको यणचि
7	इच्	इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ (8)	नादिचि
8	एच्	ए, ओ, ऐ, औ (4)	एचोऽयवायावः
9	ऐच्	ऐ, औ (2)	वृद्धिरादैच्
10	अट्	अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र (13)	अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि
11	अण्	अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल (14)	अणुदित्सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः
12	इण्	इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल (13)	इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात्
13	यण्	य, व, र, ल (4)	इको यणचि
14	अम्	अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न (19)	पुमः खय्यम्परे
15	यम्	य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न (9)	हलो यमां यमि लोपः
16	ञम्	ञ, म, ङ, ण, न (5)	ञमन्ताङ्गः (उ0 सू0)
17	ङम्	ङ, ण, न (3)	ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्
18	यञ्	य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ (11)	अतो दीर्घो यञि
19	झष्	झ, भ, घ, ढ, ध (5)	एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः
20	भष्	भ, घ, ढ, ध (4)	एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः
21	अश्	अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द (29)	भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि
22	हश्	ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द (20)	हशि च
23	वश्	व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द (18)	नेड्वशि कृति
24	जश्	ज, ब, ग, ड, द (5)	झलां जश् झशि
25	झश्	झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द (10)	झलां जशोऽन्ते
26	बश्	ब, ग, ड, द (4)	एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः
27	छव्	छ, ठ, थ, च, ट, त (6)	नश्छव्यप्रशान्
28	यय्	य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प (29)	अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः
29	मय्	म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प (24)	मय उञो वो वा
30	झय्	झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प (20)	झयो होऽन्यतरस्याम्
31	खय्	ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प (10)	पुमः खय्यम्परे
32	चय्	च, ट, त, क, प (5)	चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम् (वा0)
33	यर्	यर, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स (32)	यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा
34	झर्	झर, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स (23)	झरो झरि सवर्णे
35	खर्	खर, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स (13)	खरि च
36	चर्	चर, ट, त, क, प, श, ष, स (8)	अभ्यासे चर्च
37	शर्	शर, ष, स (3)	ङणोः कुँक्टुँक् शरि
38	अल्	अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष,	अलोऽन्त्यस्य

Scanned with CamScanner

		स, ह (43)	
39	हल्	ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह (34)	हलोऽनन्तराः संयोगः
40	वल्	व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह (32)	लोपो व्योर्वलि
41	रल्	र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह (31)	रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च
42	झल्	झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह (24)	झलो झलि
43	शल्	श, ष, स, ह (4)	शल इगुपधादनिटः क्सः
44	ँ	र, ल (2)	उरण् रपरः

व्याकरणशास्त्र में प्रयुक्त होने वाले सभी प्रत्याहारों का दो श्लोकों में संग्रह इस प्रकार किया गया है–

"ङ्णटञ्वात् स्मृतो ह्येकः चत्वारश्च चमान्मताः।
शलाभ्यां षड् यरात्पञ्च षाद् द्वौ च कणतस्त्रयः।।
केषाञ्चिच्च मते रोऽपि प्रत्याहारोऽपरो मतः।
लस्थाऽवर्णेन वाञ्छन्त्यनुनासिकबलादिह।।"

अर्थात् 'ङ', 'ण', 'ट', 'ञ', 'व' से एक–एक प्रत्याहार जैसे– एङ्, अण्, अट्, यञ्, छव्। 'च्', 'म्' से चार–चार प्रत्याहार जैसे–अच्, इच्, एच्, ऐच्, अम्, यम्, ञम्, ङम्। 'श्', 'ल्' से छह–छह प्रत्याहार जैसे– अश्, हश्, वश्, जश्, झश, बश, अल्, हल्, वल्, रल्, झल्, शल्। 'य्', र्, से पाँच–पाँच प्रत्याहार जैसे– यय्, मय्, झय्, खय्, चय्, यर्, झर् खर्, चर्, शर्। 'ष्' से दो प्रत्याहार जैसे– झष्, भष्। 'क्', 'ण्' से तीन–तीन प्रत्याहार जैसे– अक्, इक्, उक्, अण्, इण्, यण् बनते हैं। कुछ आचार्यों के मत में "लँण्[8]" सूत्रस्थ अवर्ण के अनुनासिक होने के कारण एक अन्य 'रँ' प्रत्याहार भी माना जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पा. अ. सूत्र.*– 8/2/66
2. पा. अ. सूत्र.– 1/3/2
3. पा. अ. सूत्र.– 1/3/9
4. पा. अ. सूत्र.– 6/1/84
5. पा. अ. सूत्र.– 2/3/19
6. पा. अ. सूत्र.– 6/1/74
7. पा. अ. सूत्र.– 6/1/64
8. पा. अ. सूत्र.– माहेश्वर सूत्र सं.– 6

*पाणिनीय–अष्टाध्यायी–सूत्रपाठः

Scanned with CamScanner

ISSN 2249 - 2313

षाण्मासिकी संस्कृतशोधपत्रिका

Half Yearly Sanskrit Research Journal

Vol. VIII Oct,2015 - Mar, 2016 No. 2

वर्षम् - ८ अक्टूबर, २०१५- मार्च, २०१६ अङ्कः - द्वितीयः

प्राचीसुधा

PRACI SUDHA

'प्राचीसुधा' सुललिता बहुशास्त्रतत्त्व-
पूर्णा जगज्जनहिताऽखिललोकमान्या ।
आध्यात्मिकीं सुखकथां परिवेषयन्ती
संराजतां निरभिमानबुधेषु नित्यम् ॥

सम्पादकः सञ्चालकश्च

डॉ. विश्वनाथस्वाईं

पुरुषोत्तमप्राच्यविद्याशोधप्रतिष्ठानम्, पुरी, ओडिशा

PURUSOTTAM RESEARCH ACADEMY OF INDOLOGY
PURI, ODISHA

Scanned with CamScanner

विषयसूची

पृष्ठाङ्का:	विषया:	लेखका:
३.	सम्पादकीयम्	डॉ.विश्वनाथस्वाईं
५.	श्रीजगन्नाथाष्टकरमाभाष्यम्	आचार्य:(डॉ.)विन्ध्येश्वरप्रसादहिमांशु:
९.	दीर्घजीवनम्	महामहोपाध्यायखिपाठी डॉ.सुधाकराचार्य:
११.	निम्बार्कदर्शने जीवस्वरूपम्	डॉ.अशोकचन्द्रगौड शास्त्री
१४.	लावण्यबोध:	डॉ.शिवप्रसादबेहेरा
१८.	अथर्ववेदे शान्तिपुष्टिकर्माणि	डॉ.काह्नुचरणपण्डा
२४.	मनुस्मृतौ कर्त्तव्यशीलनम्	डॉ.मेधाकुमारी
२७.	श्रीमद्भागवते मुक्तितत्त्वम्	डॉ.मखलेशकुमार:
३१.	महाभारते धर्म:	डॉ.सुमन्तकुमारदास:
३५.	प्राचीनभारते स्त्रीशिक्षा	डॉ.वृन्दावनपात्र:
४१.	वैदिकवाङ्मये पर्यावरणम्	डॉ.महेश झा
४५.	स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्	डॉ.निर्मला पाणिग्राही
४८.	भारतीयदर्शनदर्पण:	डॉ.विष्णुप्रसाददाश:
५२.	भारतीयसंस्कृतौ सङ्गीतम्	डॉ.द्वारिकानाथत्रिपाठी
५६.	नामकरणसंस्कार:	राजेश्री डॉ.महन्त: रामसुन्दरदास:
६०.	सर्गप्रलयप्रक्रियाविमर्श:	डॉ.विष्णुपदमहापात्र:
६५.	स्मृतिशास्त्रे शिवतत्त्वविमर्श:	डॉ.देवीपदरथ:
६९.	आत्मसंस्कारप्रकाश:	डॉ.युधिष्ठिरसाहु:
७३.	वेददिशा कारणतावादविचार:	डॉ.वृन्दावनदाश:
७९.	ऋग्वेदसंहितायां मित्रावरुणौ	डॉ.शत्रुघ्नपाणिग्राही
८४.	संदेश: कामगीताया:	डॉ.भारतेन्दुपाण्डेय:
८६.	गीतगोविन्दपूर्ववर्त्तिसाहित्ये श्रीराधा	ममता राउतराय
९२.	भारतीयसमाजे भ्रूणहत्या	अनुसूया पृष्टि:
९५.	सामसु मानसिकोपचार एवमन्तराभव:	डॉ.राजवीर:
९६.	अर्थवद्ग्रहणे नानार्थकस्य....	डॉ.विनोदकुमार झा
९८.	श्रीमद्भागवते श्रीकृष्ण:	डॉ.रुद्रेशभट्ट:
१०२.	श्रीमद्भगवद्गीतायां धर्म:	डॉ.सीमाचलपण्डा
१०६.	धर्मशास्त्रे ऋणादानव्यवहारपदम्	डॉ.दयानिधिमिश्र:
१०८.	Declaration	

Scanned with CamScanner

अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य ग्रहणम् – एकः विचारः

डॉ. विनोदकुमार झा

"प्र ऊढः" इति दशायां "प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु" इति वार्तिकेन वृद्धौ सत्यां "प्रौढः" इति रूपं सम्पन्नतां याति । अत्र मनसि प्रश्नः समुदेति यत् यथा "प्रौढः" इत्यत्र वृद्धिर्भवति तथैव "प्र+ऊढवान्" इत्यत्रापि "ऊढ"शब्दस्य सत्त्वात् "प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु" इति वार्तिकेन वृद्धौ सत्यां "प्रौढवान्" इति रूपं सम्पन्नं भवेत् "प्रोढवान्" इत्यस्य स्थाने । "प्रोढवान्" इत्यत्र कथं गुणः क्रियते । अत्र उत्तरं वर्तते – एका परिभाषाऽस्ति – "अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य" इति । अत्र "ग्रह्"धातोः "कृत्यल्युटो बहुलम्"[१] इति सूत्रेण बाहुलकात् कर्तरि अर्थे ल्युट्-प्रत्यये सति निष्पन्नस्य "ग्रहण"शब्दस्य स्वीकारे "ग्रहण"शब्दार्थो भवति – बोधकः । "अर्थवद्ग्रहणे" इत्यस्य तद्घटितशास्त्रे लक्षणायां सत्यां परिभाषार्थो भवति – अर्थबोधकपदघटितशास्त्रे अनर्थकस्य ग्रहणं न भवति । एवम्प्रकारेण अर्थबोधक-ऊढपदघटिते "प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु" इति शास्त्रे अनर्थकस्य ऊढशब्दस्य ग्रहणं न भवति । अथवा भावार्थके "ग्रहण"पदस्वीकारे "सम्भवति" इति पदम् अध्याहार्य "सति सम्भवे अर्थवद्ग्रहणे अनर्थकस्य ग्रहणं न भवति" इत्यर्थोऽपि स्वीकर्तुं शक्यते । अस्यां परिस्थितौ "प्र ऊढः" इति दशायां "ऊढ"शब्दस्य अर्थवत्त्वाद् उपर्युक्तवार्तिकेन वृद्धिर्भवति । "प्र+ऊढवान्" इत्यत्र "ऊढ"शब्दस्य अनर्थकत्वात् न जायते वृद्धिरिति । उक्तञ्चापि – "समुदायो हि अर्थवान् न तु तदेकदेशः ।" इति ।

अत्र परिभाषायां मूलं वर्तते सार्थकशब्दस्य अर्थत्यागे प्रमाणाभावत्वम् । अत्रेदं ज्ञेयं यत् "स्वं रूपं शब्दस्याऽशब्दसंज्ञा" इति सूत्रे स्वशब्द आत्मीयवाची वर्तते । आत्मीयवाचिना स्वशब्देन लौकिकाऽर्थो गृह्यते तथा च रूपशब्देन स्वरूपम् अर्थात् शब्दस्य स्वरूपम् । यथा "घट"पदस्य स्वरूपं वर्तते – "घ्+अ+ट्+अ" इति । एवम्प्रकारेण कस्यापि शब्दस्य अर्थद्वयं वर्तते – १. लौकिकाऽर्थः, २. शब्दगताऽनुपूर्वी अर्थात् शब्दः । लोके लौकिकाऽर्थस्य ग्रहणं भवति । यथा – घटमानय । अत्र "घट"पदेन लोके प्रसिद्धस्य कम्बुग्रीवादिमतः पदार्थस्य आनयनं भवति न तु घटपदानुपूर्विणां "घ्+अ+ट्+अ" इत्येतेषाम् । लोके लौकिकाऽर्थो विशेष्यः शब्दश्च विशेषणम् । व्याकरणशास्त्रं शब्दशास्त्रमस्ति । अत्र शास्त्रे शब्दस्य प्रधानता भवति । अत्र लौकिकाऽर्थो विशेषणं, शब्दश्च विशेष्यः, विपरीततताश्रयणे शास्त्रीयकार्यं न सम्भवति, दाहकशक्तिविशिष्टस्य अग्नेरनन्तरं "ढक्"प्रत्ययस्य विद्यमानत्वाभावात् । अत एव "अग्नेर्ढक्"[२] सूत्रस्य अर्थो भवति – सार्थक-अग्निशब्दात् "ढक्"प्रत्ययो भवेत् । अतः

यस्मिन् सूत्रे विशिष्टस्वरूपस्य उच्चारणं वर्तते । यथा "प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु" इति वार्तिके "ऊढ" इति, "व्रश्चभ्रस्ज..."[३] इति सूत्रे "राज्" इति । तत्र उच्चारितपदेन उपस्थितस्य अर्थस्य शब्दं प्रति विशेषणरूपेण अन्वये सम्भवे शास्त्रीयकार्यसम्पादिते च सति उच्चारितपदेन उपस्थितस्य अर्थस्य त्यागकरणम् उचितं नास्ति । अत्र किमपि प्रमाणमपि नास्ति । तस्मात् प्रमाणाभावात् सार्थकशब्दस्यैव ग्रहणं भवति अर्थबोधकपदघटितशास्त्रे न तु अनर्थकस्य ।

अत्र परिभाषायाम् अर्थेन अन्वयव्यतिरेकाभ्यां कल्पितस्य शास्त्रीयस्य अर्थस्य ग्रहणं भवति वाक्यार्थस्य मुख्यत्वात् । तत्सत्त्वे त्सत्त्वम् अन्वयः । तदसत्त्वे तदसत्त्वं व्यतिरेकः ।

इयं परिभाषा वर्णबोधकपदघटितशास्त्रे न प्रवर्तते । यतोहि "लुनाति" इत्यत्र लकारस्य स्थाने तिङादेशः कथं न भवति इति प्रश्ने सति "अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य ग्रहणम्" इति स्वकीय-उत्तरेण महाभाष्यकारो स्वयमेव सन्तुष्टो न भवति वर्णबोधकपदघटितशास्त्रे अस्याः परिभाषायाः अप्रवृत्तित्वात् । वर्णबोधकपदघटितशास्त्रं यथा – "लस्य"[४] । सहैव वर्णबोधकपदघटितशास्त्रे "अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य" परिभाषायाः प्रवृत्तिर्न भवति । अत एव "अत इञ्"[५] इत्यादिषु सूत्रेषु प्रातिपदिकस्य विशेषणीभूतेन वर्णबोधकेन "अत"पदेन तदन्तग्रहणं भवति, तथा च "दाक्षिः" इत्यादिषु स्थलेषु "अत इञ्" इत्यनेन "इञ्" प्रत्ययो भवति । अत्र अकारान्त-दक्ष-आदिपदेषु अकारः निरर्थको वर्तते । तेन निरर्थक-अकारेण तदन्तविधिर्भवति; तस्मादेव "अला एव अनर्थकेन तदन्तविधिः" इति उक्तम् । अन्यथा अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य परिभाषायाः वर्णबोधकपदघटितशास्त्रे प्रवृत्तौ "दाक्षिः" इत्यादिषु स्थलेषु, यत्र अकारः अनर्थको वर्तते तत्र "अत इञ्" इत्यस्य प्राप्तिरेव नास्ति । अतः वर्णविधिं परित्यज्य अन्यत्र अर्थवद्ग्रहणे अनर्थकस्य ग्रहणं न भवति ।

"अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य" परिभाषायाः अपवादभूता परिभाषा "अनिनस्मन्ग्रहणान्यर्थवता चानर्थकेन च तदन्तविधिं प्रयोजयन्ते ।" इति ।

सन्दर्भाः –

१. पा.अ.सू.* – ३.३.११३
२. पा.अ.सू. – ४.२.३३
३. पा.अ.सू. – ८.२.३६
४. पा.अ.सू. – ३.४.७७
५. पा.अ.सू. – ४.१.९५
* पाणिनीयः अष्टाध्यायी-सूत्रपाठः

—०—

प्रोफेसर, व्याकरणविभागः,
श्रीसोमनाथसंस्कृतयूनिवर्सिटी (गुजरात)

Scanned with CamScanner

ISSN 2249 - 2313

षाण्मासिकी संस्कृतशोधपत्रिका

Half Yearly Sanskrit Research Journal
Vol. X Oct,2017 - Mar,2018 No.2
वर्षम् – १०, अक्टूबर २०१७ – मार्च २०१८, अङ्कः – द्वितीयः

प्राचीसुधा

PRACI SUDHA

"प्राचीसुधा" सुललिता बहुशास्त्रतत्त्व-
पूर्णा जगज्जनहिताऽखिललोकमान्या ।
आध्यात्मिकीं सुखकथां परिवेषयन्ती
संराजतां निरभिमानबुधेषु नित्यम् ।।

सम्पादकः सञ्चालकश्च
डॉ. विश्वनाथस्वाईं

पुरुषोत्तमप्राच्यविद्याशोधप्रतिष्ठानम्, पुरी, ओड़िशा
PURUSOTTAM RESEARCH ACADEMY OF INDOLOGY
PURI, ODISHA

Scanned with CamScanner

प्राचीसुधा/अक्टूबर-२०१७ – मार्च-२०१८
PRACI SUDHA ISSN 2249 - 231
AN INTERNATIONAL REFERRED HALF-YEARLY SANSKRIT RESEARCH JOURNAL
दशमवर्षम् द्वितीयसंख

विषयसूची

पृष्ठाङ्का:	विषया:	लेखका:
३.	सम्पादकीयम्	प्रो.विश्वनाथस्वाईं
५.	विष्णुपुराणे नरका:	महामहोपाध्यायत्रिपाठी डॉ.सुधाकराचार्य
७.	उत्तररामचरिते पर्यावरणचर्च्चा	डॉ.वसन्तकुमारमिश्र:
१२.	अलङ्कारशास्त्रस्योद्गमस्रोत:	प्रो.सूर्यमणिरथ:
१५.	विष्णुपुराणे कालस्वरूप:	डॉ.पूनम लखनपाल:
१७.	साहित्यशास्त्रदृष्ट्या शिक्षासम्प्रत्यय:	डॉ.कृपाशङ्करशर्मा
२२.	शास्त्रेषु मनुस्मृते: प्रमाणताविचार:	डॉ.विश्वनाथ हेगडे
२६.	लकारार्थविश्लेषणम्	डॉ.द्वारिकानाथत्रिपाठी
३२.	स्फोट-विमर्श:	प्रो.विनोदकुमार झा
३६.	विष्णुपुराणे आत्मस्वरूपम्	डॉ.उमा चौरसिया (राहुल)
३८.	ऋग्वेदे मण्डूक:	डॉ.शत्रुघ्नपाणिग्राही
४२.	मुक्ति: श्रीपुरुषोत्तमे	डॉ.लक्ष्मीकान्तषडङ्गी
४६.	आनन्दवर्द्धनस्य संवाद:	डॉ.हीरालालदाश:
४९.	कौटिल्यार्थशास्त्रे विवाह:	डॉ.राजबीर:
५१.	उत्तररामचरिते पर्यावरणपरिशीलनम्	डॉ.गीताञ्जली नायक:
५५.	वैष्णव्युत्क्रान्ति:	डॉ.सन्तोषकुमारी
५७.	महाभारते श्राद्धतत्त्वम्	डॉ.प्रकाशकुमारशतपथी
५९.	रुक्मिणीशविजयकाव्ये भक्तिरस:	लङ्क पार्थ सारथि:
६५.	छान्दग्योपनिषद्दृशा प्राणसाधनसोपानानि	डॉ.पराम्बा श्रीयोगमाया
७२.	शास्त्राधिगमे शिक्षणविधि:	डॉ.प्रियदर्शिनी मेकाप
७६.	ज्योतिषशास्त्रे वनस्पतिप्रयोग:	डॉ.रमेशचन्द्रशुक्ल:
८२	स्कन्दपुराणे कूर्माचलदर्शनम्	डॉ.कीर्त्तिवल्लभ शक्टा
८६.	धर्मविजयनाटकस्य प्रासङ्गिकता	नम्रता उपाध्याय:
९०.	विष्णुपुराणालोके यादवत्वविमर्श:	डॉ.भारतेन्दुपाण्डेय:
९३.	वामनपुराणे सरस्वती	डॉ.सङ्गीता अग्रवाल
९५.	जगन्नाथदर्शने रथयात्रा	डॉ.गगनचन्द्र दे
१००.	Declaration	

—०—

Scanned with CamScanner

स्फोट-विमर्श:

(परमलघुमञ्जूषाया: आलोके)

प्रो.विनोदकुमार झ

व्याकरणशास्त्रदृष्ट्या स्फोटतत्त्वस्य तथैव महत्त्वं वर्त्तते यथा न्यायशास्त्रे परमाणो तथा वेदान्तशास्त्रे ब्रह्मतत्त्वस्य महत्त्वं वरीवर्त्तते । वैयाकरणानां दार्शनिकी पृष्ठभूमि स्फोटमेव आधारीकृत्य सुनिश्चिता वर्त्तते । यावत् स्फोटतत्त्वस्य चिन्तनं न क्रियते तावत् व्याकरणदर्शनस्य कल्पना, कल्पनैव दरीदृश्यते ।

परमलघुमञ्जूषायां कोऽयं वृत्त्याश्रय: शब्द इति प्रश्ने सति नैयायिका: कथयन्ति – वर्णा:, अर्थात् वृत्त्याश्रय: शब्दो वर्त्तते - वर्णा: । शाब्दिकै: अस्योत्तरस्य खण्डनं क्रियते । तेषां मतानुसारं यदि प्रत्येकं वर्ण: वृत्त्याश्रय: शब्दो वर्त्तते, तर्हि द्वितीयादीन वर्णानाम् उच्चारणं व्यर्थीभवति । संघाते सति संघातो भवितुं न शक्नोति, उच्चारितप्रध्वंसित्वेन यौगपद्यासम्भवात्, अभिव्यक्तेरुत्पत्तेर्वा क्षणस्थायित्वात्, क्षणात्मककालस्य प्रत्यक्षायोग्यत्वेन तदवच्छिन्नवर्णस्याप्यप्रत्यक्षत्वात्, "इको यणचि"[1] "तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य"[2] इत्यादिस्थलेषु परिष्कृतवाक्यार्थे "अयं पूर्व:", "अय पर:" इति प्रत्यक्षविषयकेन इदंशब्देन नष्टस्य पौर्वापर्यव्यवहारायोगाच्च उच्चारितप्रध्वंसित्वं नाम – उच्चारणाधिकरणकालोत्तरकालवृत्तिध्वंसप्रतियोगित्वम् यस्य ध्वंस: स: प्रतियोगी ।

अथ नैयायिकै: त्रयो हेतव: शाब्दबोधे प्रस्तूयन्ते उपर्युक्तप्रकारेण वर्णानाम् अनित्यत्वपक्षे, तत्र प्रथम: पक्षो यथा – वर्णानाम् अनित्यत्वेऽपि अव्यवहितोत्तरत्वसम्बन्धेन उत्तरोत्तरवर्णे पूर्व-पूर्व-वर्णवत्त्वं- पूर्व-पूर्व-वर्णयुक्तत्वं संस्कारवशाद् गृह्यते, तस्मात् पदस्य प्रत्यक्षत्वान्नास्ति शाब्दबोधे हानि: । द्वितीय: पक्ष: – शब्दजशब्दन्यायेन पूर्व-पूर्व-वर्णजा: शब्द: = ध्वनय: उच्चार्यमाणपदस्य उन्त्यवर्णश्रवणपर्यन्तं पौन:पुन्येन उत्पन्न भवन्ति, तस्मान्नास्ति पदप्रत्यक्षौ अनुपपत्ति: । तृतीय: पक्ष: – पूर्व-पूर्व-वर्णानुभव (श्रवण) जन्यसंस्कारेण सह सधीचीन (सहपठित) चरमवर्णस्य श्रवणेन शाब्दबोधो जायते ।

परम् उपर्युक्तस्य प्रत्येकं पक्षस्य प्रामाणिकं खण्डनं महाभाष्यमतविरोधपुर:स शाब्दिकै: प्रस्तूयते । यथा – प्रथमे पक्षे नष्टविद्यमानयोर्वस्तुनोरव्यवहितोत्तरत्वसम्बन्धस्य वक्तुमशक्यत्वेन नष्टविद्यमानयोर्वर्णयोर्मध्ये "अयं पूर्वो वर्णोऽयं परो वर्ण:" इति व्यवहारसम्भवेन च तयोरव्यवहितोत्तरत्वसम्बन्धस्य अयोगात् । द्वितीये पक्षे शब्दजशब्दन्यायेन पदप्रत्यक्षोपपादनेऽपि पदस्य अविद्यमानत्वेन तत्र अविद्यमाने पदे शक्त्याश्रयत्वस्य सङ्गतानुपपत्ते: । आश्रयत्वाङ्गीकारे तु "नष्टो घटो जलवान्" इत्याद्यापत्तेश्च । तृतीये पक्षे येन क्रमेण वर्णानां श्रवणं भवति तेनैव क्रमेण संस्कारेऽपि

तेषाम् उपस्थितिर्भवेदत्र विनिगमकाभावेन "सरो रस:", "नदी दीन:" इत्यादौ विपरीतसंस्कारोद्बोधेन च प्रत्येकम् अन्यार्थप्रत्ययापत्तेर्सत्त्वादयमपि पक्षो नाश्रयणीय: । एकतरपक्षपातिनी युक्ति: विनिगमना ।

पुनश्च नैयायिकमतानुसारम् उत्पत्ति-विनाशधर्मयुक्तस्य वर्णसमुदायरूपपदस्य मनुष्यादिवद्भेदे स्वीकारे "एक इन्द्र-शब्द: क्रतुशते प्रादुर्भूतो युगपत् सर्वयागेष्वङ्गं भवति" इति भाष्यविरोधापत्तिरपि वर्तते, महाभाष्यानुसारं एकस्य एव इन्द्र-शब्दस्य क्रतुशते अभिव्यक्तत्वेन - प्रादुर्भूतत्वेन पदस्य नित्यत्वात् । महाभाष्यपङ्क्तौ "प्रादुर्भूत:" इति शब्दस्य अर्थ: "अभिव्यक्त:" इति विद्यते ।

उपर्युक्तप्रकारेण प्रत्येकं नैयायिकमतस्य सयुक्तिकं खण्डनं विधाय वैयाकरणै: स्फोटात्मको वृत्त्याश्रय: शब्दो विद्यते इति स्वकीयं पक्षं समुपस्थाप्यते उच्यते च – चतुर्विधा हि वागस्ति – परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी च । तत्र मूलाधारस्थ-पवन-संस्कारीभूता मूलाधारस्था शब्दब्रह्मरूपा स्पन्दशून्या विन्दुरूपिणी "परा" वाग् उच्यते । नाभिपर्यन्तम् आगच्छता तेन वायुना अभिव्यक्ता मनोगोचरीभूता "पश्यन्ती" वाग् उच्यते । एतद्द्वयं वाग्ब्रह्म योगिनां समाधौ निर्विकल्पक-सविकल्पक-ज्ञानविषय इत्युच्यते । ततो हृदयपर्यन्तम् आगच्छता तेन वायुना अभिव्यक्ता तत्तदर्थ-वाचक-शब्दस्फोटरूपा श्रोत्र-ग्रहणायोग्यत्वेन सूक्ष्मा, जपादौ बुद्धिनिर्ग्राह्या "मध्यमा" वाग् उच्यते । तत आस्यपर्यन्तम् आगच्छता तेन वायुना ऊर्ध्वम् आक्रमता च मूर्धानम् आहत्य परावृत्य च तत्तत्स्थानेष्वभिव्यक्ता परश्रोत्रेणापि ग्राह्या "वैखरी" वाग् उच्यते । तदाह –

परावाङ् मूलचक्रस्था पश्यन्ती नाभिसंस्थिता ।
हृदिस्था मध्यमा ज्ञेया वैखरी कण्ठदेशगा ।।
वैखर्या हि कृतो नाद: परश्रवणगोचर: ।
मध्यमया कृतो नाद: स्फोट-व्यञ्जक इष्यते ।।

वक्तुर्दृष्ट्या युगपदेव मध्यमा-वैखरीभ्यां नाद उत्पद्यते । तत्र मध्यमानादोऽर्थवाचक-स्फोटात्मकशब्दव्यञ्जक: । वैखरीनादो ध्वनि: सकलजनश्रोत्रमात्रग्राह्यो भेर्यादिवन्निरर्थक: । मध्यमानादश्च वैखरीनादापेक्षया सूक्ष्मतर: कर्णपिधाने जपादौ च सूक्ष्मतरवायुव्यंग्य: शब्द-ब्रह्मरूप-स्फोटव्यञ्जकश्च । तादृश-मध्यमानादव्यंग्य: शब्द: स्फोटात्मको ब्रह्मरूपो नित्यश्च । तदाह भर्तृहरिरपि –

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम् ।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यत: ।।[1]

अर्थात् आदिरहितं, निधनरहितम्, अक्षरमित्तत्वादक्षरं शब्दतत्त्वं ब्रह्म वर्तते, यत: – यत्र शब्दतत्त्वे ब्रह्मणि जगत: अर्थभावात्मिका – पदार्थात्मिका प्रक्रिया विवर्तते - भासते ।

स च स्फोटात्मक: शब्दो यद्यपि एकोऽखण्डश्च तथापि पदभेदेन वाक्यभेदेन च

Scanned with CamScanner

व्यवह्रियते । लौहित्य-पीतत्वादिव्यञ्जक-जपाकुसुमादिसम्पर्कवशाद् यथा लोहितः, पीतः स्फटिको भासते यथा च मुखे मणि-कृपाण-दर्पणव्यञ्जकोपाधिवशाद् दैर्घ्यवर्तुलत्वादिभानं भवति तथैव स्फोटात्मकः शब्दो वर्ण-व्यङ्ग्यः सन् वर्णरूपः, पद-व्यङ्ग्य सन् पदरूपः, वाक्य-व्यङ्ग्यः सन् वाक्यरूपः भासते, किन्तु परमार्थतः तथा नास्ति । अत एव उक्तं वाक्यपदीये –

पदे न वर्णा विद्यन्ते वर्णेष्ववयवा न च ।
वाक्यात् पदानामत्यन्तं प्रविवेको न कश्चन ।।[४]

अत्र प्रविवेक-शब्दस्य अर्थो विद्यते पार्थक्यम् अर्थात् पदे वर्णा न सन्ति, वर्णेषु अवयवा न विद्यन्ते तथा च वाक्यात् पदानां न कश्चन अत्यन्तं प्रविवेकः – पार्थक्यं वर्तते ।

किञ्च व्यञ्जकध्वनिगतं कत्व-गत्वादिकं स्फोटे भासते, यतोहि विम्बगतः - व्यञ्जकगतो यो धर्मो भवति तद्धर्मविशिष्टस्यैव प्रतिविम्बस्य = व्यङ्ग्यस्य लोकेऽवधारणात् = ज्ञानात् । व्यञ्जकरूषितस्यैव = विम्बयुक्तस्यैव स्फटिकादेर्भानाच्च । यथा च एकस्यैव आकाशस्य "घटाकाशः", "महाकाशः" इति औपाधिको भेदो भवति, यथा च एकस्यैव चैतन्यस्य औपाधिको जीवेश्वरभेदो तथा च जीवनाञ्च परस्परभेदो भवति, तथैव स्फोटे व्यञ्जकध्वनिगत-कत्व-गत्वादिधर्मानां भानात् ककारो बुद्ध इति औपाधिको भेदः = उपाधिकृतभेदव्यवहारो जायते । "औपाधिको भेदः" इत्यत्र उपाधिः घट-कत्वादिर्भिन्नः उपधेयस्तु आकाश-स्फोटादिरेक एव इति तात्पर्यम् । पद-वाक्ययोः सखण्डत्वपक्षे तु अन्तिमवर्णव्यङ्ग्यः स्फोट एक एव । पूर्व-पूर्व-वर्णस्तु तात्पर्यग्रह्मकः । न्यायनये "चित्रगुः" इत्यादौ चित्रादिपदवत् ।

ध्वनिस्तु द्विविधः प्राकृतः वैकृतश्च । प्रकृत्या = अर्थबोधनेच्छया स्वभावेन वा जातः स्फोट-व्यञ्जकः, प्रथमः प्राकृतः । तस्मात् प्राकृताज्जातो विकृतिविशिष्ट-चिरस्थायिनिवर्तको वैकृतिकः । भर्तृहरिणा उच्यते यथा –

स्फोटस्य ग्रहणे हेतुः प्राकृतो ध्वनिरिष्यते ।।[५]
शब्दस्योर्ध्वमभिव्यक्तेर्वृत्तिभेदे तु वैकृताः ।
ध्वनयः समुपोहन्ते स्फोटात्मा तैर्न भिद्यते ।।[६]

अर्थात् स्फोटस्य अभिव्यक्तौ प्राकृत-ध्वनिः हेतुरूपेण वर्तते तथा स्फोटस्य अभिव्यक्तेरनन्तरं द्रुतादिवृत्तिभिन्नतायां वैकृत-ध्वनिः हेतुर्भवति । तेन वैकृतध्वनिना स्फोटो न भिद्यते ।

वृत्तिभिन्नता यथा –

अभ्यासार्थे द्रुता वृत्तिर्मध्या वै चिन्तने स्मृता ।
शिष्याणाम् उपदेशार्थं वृत्तिरिष्टा विलम्बिता ।।

अर्थात् अभ्यासकाले द्रुता वृत्तिः, चिन्तनकाले मध्या वृत्तिः तथा च शिष्याणाम् उपदेशकाले विलम्बिता वृत्तिरभिष्टा भवति ।

इदानीं वैखरी-नादस्य मध्यमा-नादस्य च उदाहरणद्वारा स्पष्टीकरणं क्रियते यथा – केनचिद् "घटम् आनय" इति "वैखरी" नादः प्रयुक्तः । स केनचित् श्रोत्रेन्द्रियेण गृहीतः । स नाद इन्द्रियद्वारा बुद्धिह्रदतः सन् अर्थबोधकं शब्दं स्वनिष्ठ-कत्वादिना व्यञ्जयति । तस्माद् अर्थबोधः । "स्फुटति अर्थोऽस्माद्" इति व्युत्पत्त्या स्फोटः । उच्चारयितुसु युगपदेव "मध्यमावैखरीभ्यां" नाद उत्पद्यते । तत्र वैखरी-नादो वह्नेः फूत्कारादिवन् मध्यमा-नादोत्साहकः । मध्यमा-नादः स्फोटं व्यञ्जयति इति शीघ्रमेव ततोऽर्थबोधः उच्चारयितुः । परस्य विलम्बेन अनुभव-सिद्धत्वात् ।

अत एव "श्रोत्रोपलब्धिर्बुद्धिनिर्ग्राह्यः प्रयोगेणाभिज्वलितः = अभिव्यक्त आकाशदेशः शब्दः" इत्याकारग्रन्थः सङ्गच्छते । कत्वादिना श्रोत्रोपलब्धित्वं स्फोटात्मक-पदादिरूपेण तु बुद्धिनिर्ग्राह्यत्वम् । स च प्रयोगेण वैखरीरूपेण अभिज्वलितः = अभिव्यक्तः स्वरूपरूषितः = स्वरूपयुक्तः कृत इति उपर्युक्तमहाभाष्यपङ्क्तेरर्थः ।

जातिरेव वास्तविकः स्फोटः इति ध्वयन् कथ्यते – तत्रापि शक्यत्वस्येव शक्तितावच्छेदिकाया वर्ण-पद-वाक्यनिष्ठजातेः वाचकत्वम् । उक्तञ्चापि –

अनेकव्यक्त्यभिव्यङ्ग्या जातिः स्फोट इति स्मृता ।[७]

तस्माद् अष्टविधस्फोटात्मकः शब्दो वृत्त्याश्रयः । वस्तुतस्तु वाक्यस्फोटो वाक्यजातिस्फोट एव वृत्त्याश्रयः । तत एव लोके अर्थबोधात् ।

संदर्भसूची –

१. पाणिनीय-अष्टाध्यायीसूत्रपाठः – ६/१/७७ ।
२. तत्रैव – १/१/६६ ।
३. वाक्यपदीये ब्रह्मकाण्डे, कारिकासंख्या -१ ।
४. तत्रैव, कारिकासंख्या -७३ ।
५. तत्रैव, कारिकासंख्या -७६ ।
६. तत्रैव, कारिकासंख्या -७८ ।
७. तत्रैव, कारिकासंख्या -९३ ।

—०—

व्याकरणविभागमुख्यः,
श्रीसोमनाथसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वेरावल, गुजरात

Scanned with CamScanner

ISSN 2249 - 2313

षाण्मासिकी संस्कृतशोधपत्रिका

Half Yearly Sanskrit Research Journal

Vol. X Apr,2017 - Sept,2017 No.1

वर्षम् – १०, अप्रेल २०१७ – सितम्बर २०१७, अङ्कः – प्रथमः

प्राचीसुधा

PRACI SUDHA

"प्राचीसुधा" सुललिता बहुशास्त्रतत्त्व-
पूर्णा जगज्जनहिताऽखिललोकमान्या ।
आध्यात्मिकीं सुखकथां परिवेषयन्ती
संराजतां निरभिमानबुधेषु नित्यम् ।।

सम्पादकः सञ्चालकश्च

डॉ.विश्वनाथस्वाईं

पुरुषोत्तमप्राच्यविद्याशोधप्रतिष्ठानम्, पुरी, ओड़िशा

PURUSOTTAM RESEARCH ACADEMY OF INDOLOGY

PURI, ODISHA

Scanned with CamScanner

विषयसूची

पृष्ठाङ्का:	विषया:	लेखका:
३.	सम्पादकीयम्	डॉ.विश्वनाथस्वाईं
५.	श्रीजगन्नाथाष्टकरमाभाष्यम्	आचार्य:(डॉ.)विन्ध्येश्वरप्रसादहिमां
८.	संप्रतिसमाजेऽनन्या भक्तिरेव साम्प्रतिकसाधनम्	महामहोपाध्यायखिपाठी डॉ.सुधाकराचा
१०.	वामनवैशिष्ट्यम्	डॉ.द्वारिकानाथत्रिपाठी
१७.	पुराणेषु सांख्यदर्शनस्य व्यापकत्वम्	प्रो.दाशगौरप्रिया
२४.	व्याकरणशास्त्रे भक्ति:	प्रो.विनोकुमारझा
२९.	कालिदासमहाकाव्ये धर्मशास्त्रचर्च्चा	डॉ.वसन्तकुमारमिश्र:
३४.	वैदिकवाङ्मये पितृदेवता	डॉ.शत्रुघ्नपाणिग्राही
३९.	उत्कलीयनृपाणां राजत्वकाले संस्कृतसाहित्यचर्च्चा	डॉ.जितेन्द्रकुमारदाश:
४५.	प्रह्लादस्तुति:	प्रो.चन्द्रशेखरमिश्र:
४९.	वामनपुराणे धर्मचिन्तनम्	डॉ.उमाकान्तमिश्र:
५३.	बाणस्तु पञ्चानन:	प्रो.अर्चना दुवे
६१.	वामने सरस्वतीवैशिष्ट्यम्	डॉ.सूर्यनारायणगौतम:
६५.	प्रातिशाख्येषु पाणिनीयसंज्ञानिर्वचनम्	डॉ.युधिष्ठिरसाहु:
७१.	व्यवहारस्थापना	डॉ.दयानिधिमिश्र:
७३.	शान्तोऽपि नवमो रस:	डॉ.हीरालालदाश:
७८.	आत्मतत्त्वस्वरूपम्	डॉ.उमा चौरसिआ
८०.	देवाभिधानव्युत्पादनवैशिष्ट्यं वामनपुराणस्य	डॉ.भारतेन्दुपाण्डेय:
८४.	Declaration	

—०—

Scanned with CamScanner

व्याकरणशास्त्रे भक्तिः

प्रो.विनोदकुमार झा

सेवार्थकात् "भज्" धातोः "क्तिन्"-प्रत्यये कृते भक्तिशब्दस्य सिद्धिः यस्यार्थो विद्यते सेवाकरणम् । भक्तिः बहुविधा । प्रत्येकं जनस्य कृते भक्तेः व्याख्या, भक्तेः परिभाषा[१], भक्तेः स्वरूपं पृथक् पृथक् भवितुं शक्नोति । किन्तु तत्र अव्यवस्था न स्यात्, भक्तिः सात्त्विकी भवेत्, अहितकरी न स्याद् एतदर्थं भक्तेः स्वरूपस्य विमर्शः शास्त्रानुसारी भवेदिति आवश्यकं विद्यते। भक्तेः सम्बन्धोऽध्यात्मेन सह भवति । अध्यात्मशब्दस्य व्युत्पत्तिर्वर्तते आत्मनि इति अध्यात्मम्[२] अर्थात् आत्मसम्बद्धम् । यदा किमपि वस्तु आत्मसम्बद्धं भवति, कोऽपि विषय आत्मसम्बद्धो भवति, किमपि शास्त्रम् आत्मसम्बद्धं भवति तदैव तत्र निपुणता, वैशिष्ट्यादिकः च गुणः आगच्छति । एवम्प्रकारेण न कदाचित् साक्षात् स्यात् किन्तु परम्परयाऽपि प्रत्येकं वस्तुनः, प्रत्येकं विषयस्य, प्रत्येकं शास्त्रस्य आत्मना सह सम्बन्धवशात् भक्तिना सह सम्बन्धोऽवश्यमेव वर्तते ।

किं बहुना, व्याकरणम् एकं सर्वशास्त्रोपयोगि शास्त्रं विद्यते शब्दसम्बन्धत्वात् । व्याकरणशास्त्रसम्बद्धं शब्दतत्त्वम् अनादिनिधनं, नित्यं, ब्रह्म, अक्षरत्वादक्षरं च । अस्य जगतः प्रक्रिया अर्थभावेन प्रकाशते[३], यस्य भोक्तृभोक्तव्यरूपेण भोगरूपेण च स्थितिः वर्तते । एकं वर्तते,[४] प्रकाशकाऽप्रकाशकयोः प्रकाशकं वर्तते व्याख्यानमाध्यमत्वात्, यस्य विषये उच्यते – "इदमन्धन्तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम् । यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते" । इति । शब्दतत्त्वस्य प्राप्त्युपायः तस्यैव अनुकारः= प्रतिमूर्तिः वेदो वर्तते। तं वेदमाश्रित्य दृष्टाऽदृष्टप्रयोजनाः स्मृतयः[८], अङ्गोपाङ्गनिबन्धनाः, ज्ञानसंस्कारहेतवः विद्याभेदाः विस्तीर्यन्ते[९] तथा च यत्र वेदे सर्ववादाविरोधिनी एकपदागम सत्या प्रणवरूपेण युक्ता विद्या = परा वाक् उक्ता वर्तते [१०], तस्य वेदस्य प्रधानाङ्गम् [११]। अथ च तस्य शब्दतत्त्वस्य ज्ञानं येन शास्त्रेण विना भवितुं न शक्नोति तत् शास्त्रमस्ति व्याकरणशास्त्रम्[१२]। अत्र व्याकरणमार्गे अस्माकं वाचा सह आत्मसम्बन्धः स्यात्, वयं वाग्योगविदः स्याम, अस्माकं समक्षमपि शब्दस्य आन्तरिकं स्वरूपं सुस्पष्टं स्यात्, तदर्थं शब्दतत्त्वस्य भक्तिरर्थात् अध्ययनाऽध्यापनरूपा सेवा करणीया । कथं करणीयेति प्रश्ने सति पाणिनिव्याकरणे सूत्रमागच्छति -"तदस्य ब्रह्मचर्यम्"[१३] अर्थात् पाणिनिकाले शिक्षाया मूलाऽऽधारभूता ब्रह्मचर्य-प्रणाली आसीत् । अस्यां प्रणाल्यां न केवलं शिक्षायाः प्रत्युत ज्ञानसंचयस्य चर्यायाः अथवा आन्तरिकजीवननिर्माणस्य उपरि अत्यधिकं बलं

प्रदीयते स्म । गुरुः शिष्यश्च विद्यासम्बन्धेन परस्परं बद्धौ भवतः स्म । सम्बन्धोऽयं पैतृकसम्बन्ध इव पवित्रः प्रभावपूर्णश्चाऽऽसीत् । शिष्यः अन्तेवासी भूत्वा आचार्येण सह निवासं करोति स्म, तथा च वास्तविकरूपेण आचार्यस्य जीवनेन प्रभावितो भवति स्म । ब्रह्मचारी "चरण" नामके विद्यासंस्थाने अन्यब्रह्मचारिभिः सह विद्याऽध्ययनं करोति स्म । ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्येति वर्णत्रयस्य ब्रह्मचारी "वर्णी" कथ्यते स्म, यथा - "वर्णाद् ब्रह्मचारिणि"[१४]। "वर्णी" शब्दोऽयं संहिता - ब्राह्मणेषु अविदित आसीत्।

छात्रः:-गुरोः ये अध्ययनं कुर्वन्ति स्म तेषां कृते सामान्यरूपेण "छात्र"- शब्दः प्रयुक्तो भवति स्म, यथा - "छत्रादिभ्यो णः"[१५] । "छात्र"- शब्दस्य मूले इयं महती मधुरा कल्पना वर्तते यत् आचार्यस्य जीवने छत्र इव छात्रस्य छाया आसीत् - छत्रं शीलमस्य । अयमेक आध्यात्मिको भाव आसीत्, येन कारणेन शिष्यः गुरुं प्रति विशेषरूपेण जागरूको भूत्वा स्वकर्तव्यपालनस्य बलं प्राप्नोति स्म -"गुरुकार्येष्ववहितः"[१६]। यथा काशिकायामपि उक्तं वर्तते यत् छात्रो गुरोः त्रुटीनामुपरि ध्यानं दत्त्वा कदापि स्वशक्तेः क्षयं न करोति स्म, यथा - "तच्छिद्रावरणप्रवृत्तः"[१७]। ब्रह्मचारिणं स्नातकं निर्मातुं कालेऽपि आचार्यस्य इयमेव भावना भवति स्म यत् मम सदाचारे एव तव ध्यानं भवेत् न तु मम त्रुट्युपरि । पाणिनिकाले सर्वेऽपि छात्राः सुछात्रा नासन्। केचन कुत्सिता अपि छात्रा आसन्, यतोहि कुत्सितछात्राणामपि वर्णनं पाणिनिव्याकरणे समुपलभ्यते ।

छात्रस्य कर्तव्यम् - उपनयनसंस्कारानन्तरं छात्रगुर्वोर्मध्ये यो नवीनः सम्बन्धो जायते स्म तेन उभावपि परस्परम् उपस्थानीयौ भवतः स्म अर्थात् शिष्यः गुरोः समीपं समागत्य तस्य सेवां करोतु तथा च तस्माद् अध्ययनं करोतु, यथा - "उपस्थानीयः" शिष्येण गुरुः[१८] तथा गुरुः अन्तेवासिनं स्वसमीपमानीय शिक्षितं कुर्यात्, यथा - "उपस्थानीयोऽन्तेवासी गुरोः[१९] । उभयोः कृते मधुरोऽयं सम्बन्धो भवति स्म ।

गुरुः - महर्षिः पाणिनिः चतुर्विधशिक्षकाणाम् उल्लेखं कृतवान् - १. आचार्यः, २.प्रवक्ता, ३. श्रोत्रियः, ४. अध्यापकश्च । तत्र आचार्यस्य स्थानं सर्वातिशायि आसीत् । शिष्यस्य उपनयनसंस्कारं कारयितुम् अधिकारः आचार्यस्यैव आसीत्। अथर्ववेदे आचार्यकरणप्रक्रियायाः वर्णनमागच्छति, यथा - "आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः" (११/५/३) अर्थात् आचार्यः उपनयसंस्कारं कृत्वा ब्रह्मचारिणं स्वविद्यागर्भस्य आभ्यन्तरे प्रवेशयति । इमामेव उदात्तकल्पनामाधारीकृत्य ब्रह्मचारी अन्तेवासी कथ्यते स्म । यथा मातुः गर्भे शिशुः पोषणं प्राप्नोति तथैव अन्तेवासी आचार्यस्य विद्यागर्भे सर्वभावेन आध्यात्मिकं पोषणं प्राप्नोति । आचार्यस्य अन्तेवासिनश्च सम्बन्धोऽयम्

Scanned with CamScanner

एतावान् घनिष्ठो भवति स्म येन आचार्यस्य नाम्ना अन्तेवासिनोऽपि नाम भवति स्म। यथा - "आचार्योपसर्जनश्चान्तेवासी"[२०] सूत्रोपरि उपलभ्यते - तित्तिरेराचार्यस्य शिष्याः तैत्तिरीयः, आपिशलेः शिष्याः आपिशलः, तथा च पाणिनेराचार्यस्य शिष्याः पाणिनीयः कथ्यते। अत्र कारणमासीत् गुरूणां छात्रैः सह पुत्रवद्व्यवहारः, यथा - पुत्रमिवाचरति पुत्रीयति छात्रम्[२१]।

स्त्रीशिक्षा - पाणिनिः पतञ्जलिश्च उभावपि वैदिकचरणेषु अध्ययनकर्त्रीणां स्त्रीणाम् उल्लेखं कुरुतः। "जातेरस्त्रीविषयोपधात्" (४/१/६३) सूत्रे जातिपदस्य परिभाषाकाले जातौ गोत्रचरणयोरुभयोरपि ग्रहणं भवति। महाभाष्ये यथा - "गोत्रं च चरणानि च"। एवमेव कठचरणे अध्ययनकर्त्री छात्रा कठी, तथा च ऋग्वेदस्य बह्वृचचरणस्य अध्ययनकर्त्री छात्रा बह्वृची कथ्यते स्म। पुरुषच्छात्राणां नियमानुसारमेव स्त्रीछात्राणामपि नियमाः आसन्। उदाहरणाय आपिशलिव्याकरणस्य अध्ययनकर्त्री ब्राह्मणजातीया स्त्री आपिशला ब्राह्मणी कथ्यते स्म। एवमेव पाणिनिव्याकरणस्य अध्येत्री पाणिनीया ब्राह्मणी आसीत्। महाभाष्ये ज्ञातं भवति यत् मीमांसासदृशक्लिष्टविषयस्य अध्ययनमपि स्त्रीणां कृते विहितमासीत्। यथा - काशकृत्स्नि-आचार्यस्य मीमांसाशास्त्रस्य अध्येत्री छात्रा काशकृत्स्ना कथ्यते स्म। महाभाष्ये यथा - काशकृत्स्निना प्रोक्ता मीमांसा काशकृत्स्नी, काशकृत्स्नीमधीते काशकृत्स्ना ब्राह्मणी (४/४/१४ सूत्रोपरि)। एवमेव विदुषी स्त्री आचार्या आसीत्। पुरुषस्य इव महिलाध्यापिकाया अपि पुरुषः छात्रः आसीत्, यथा - औदमेघ्यायाश्छात्राः औदमेघाः (४/१/७८)। पुरा काले छात्रस्य उपनयनसंस्कार इव छात्राया अपि उपनयनसंस्कारो भवति स्म। तस्मिन् काले अनुपनीता कुमारी छात्रा माणविका कथ्यते स्म।

अध्ययनस्य नियमाः - शिक्षासंस्थायाम् अध्ययनस्य दिवसः अध्यायः कथ्यते स्म। यथा - अधीयते अस्मिन्निति अध्यायः[२२]। इमामेव व्युत्पत्तिमाधारीकृत्य अनध्यायस्य दिनं तद्दिनमासीत् यस्मिन् दिने अध्ययनं न स्यात्। गृह्यसूत्रेषु धर्मशास्त्रेषु च अनध्यायस्य अवकाशस्य च नियमा उल्लिखिताः सन्ति। पाणिनिरपि अस्य उल्लेखं करोति। अध्ययनं देशकालसम्बन्धिनः केचन नियमाः आसन्। तेषां नियमानाम् उल्लङ्घनं कृत्वा यः छात्रः देशविरुद्धं कालविरुद्धं वा अध्ययनं करोति स्म, तस्य नाम अपि तथैव भवति स्म, यथा - अध्यायिन्यदेशकालात् (४/४/७१)। एतद्विषयकाणि बहूनि उदाहरणानि उपलभ्यन्ते यथा - श्माशानिकः, चातुष्पथिकः, चातुर्दशिकः, आमवास्यिकः। एकस्मिन्नेव चरणे अध्येतारः ब्रह्मचारिणः परस्परं सब्रह्मचारिणः (चरणे ब्रह्मचारिणि - ०६/०३/८६)

एकस्य गुरोः समीपे स्थित्वा अध्येतारः छात्राः सतीर्थ्याः कथ्यन्ते स्म (समानतीर्थे वासी - ०४/०४/१०७, तीर्थे ये- ०६/०३/८७)। यत्र संस्थासु अध्ययनविषयाणां ग्रन्थानाञ्च एतावान् विस्तार आसीत् तत्र एतदावश्यकमासीत् यत् कक्षाणां वर्गाणां वा वर्गीकरणं स्यात्। अतः तत्र एतदपि आसीत्।

पाठ्यक्रमः – भिन्न-भिन्न-कक्षाणां वर्गीकरणेन सूचितो भवति यत् शिक्षणसंस्थासु पाठ्य-विषयाणाम् एकः क्रमविशेषः निर्धारितः क्रियते स्म। माणवकः, अन्तेवासी, चरक एते त्रयः शब्दा छात्राणां विभिन्नावस्थानां द्योतकाः आसन्। एवमेव अध्यापकः, प्रवक्ता, आचार्यः एते शब्दाः गुरूणां क्रमिकपदानां सूचकाः आसन्, येषां सम्बन्धः शिक्षाक्रमेण आसीत्। पाठ्यक्रमस्य अध्ययनेन छात्रस्य या प्रगतिः भवति स्म तां व्यक्तीकर्तुं भाषायां केचन प्रयोगाः शब्दाश्च प्रचलिताः आसन्। ग्रन्थस्य नाम्ना अध्ययनस्य क्रमिकविकासः सूच्यते स्म, यथा - ग्रन्थाधिके च - (६/३/७९)। यथा सकलं समुहूर्तं ज्योतिषमधीते अर्थात् अमुकः छात्रः "कला" नामकं प्रकरणं यावत् "मुहूर्त" नामकं प्रकरणं यावत् ज्योतिषस्य अध्ययनं कृतवानस्ति अथवा ससंग्रहं व्याकरणमधीते अर्थात् अमुकच्छात्रः "संग्रह" ग्रन्थं यावत् व्याकरणशास्त्रम् अधीतवानस्ति। अधुनापि भाष्यान्तं व्याकरणम् अधीतवान् अस्ति, कौमुद्यान्तव्याकरणं पठितवान् अस्ति इत्यादिभिः प्रयोगैः किञ्चिद् एतादृशमेव सूच्यते। कस्यापि विषयस्य अध्ययनं समाप्तं वर्तते इति प्रकटयितुं भाषायां शब्दविशेषस्य निर्माणं सञ्जातमासीत्। अन्तवचने अव्ययीभावसमासस्य विधानमासीत् - अव्ययं विभक्तिसमीप...(२/०१/६), यथा-साग्नि अधीते अर्थात् "अग्नि" ग्रन्थपर्यन्तम् अधीते।

अध्यापनम् - चरणान्तर्गते नियमपूर्वकम् अध्यापनम् परिलक्षितम्। अध्यापनकर्त्ता च आख्याता कथ्यते स्म। यथा - आख्यातोपयोगे (१/२/२९, नियमपूर्वकं विद्याग्रहणं काशिका) काशिकायाः अनुसारं नाट्यादिलौकिकविषयाणां शिक्षा अस्य शब्दस्य तात्पर्यं न आसीत्, यथा- नटस्य शृणोति अर्थात् नटस्य नाट्यम् अथवा अभिनयं शिक्षयति। ये विषयाः धार्मिकाऽध्ययनक्षेत्रात् बहिर्भूताः आरम्भदृष्ट्या च नवीनाः आसन् तेभ्यो विषयेभ्यः स्वभावतः स सम्मानः प्राप्तो नासीत्, यः चरणेषु अनुशीलितविषयाणां कृते आसीत्।

निष्कर्षः - व्याकरणशास्त्रस्य अध्ययनाऽध्यापनव्यवस्था पूर्ववद् इदानीमपि विद्यते। व्याकरणशास्त्रस्य भक्तिरर्थात् अध्ययनाऽध्यापनरूपी सेवा प्राचीनकाल इव साम्प्रतमपि चलति, समनताकारणात्। यतोहि इदनीमपि कृतभूरिपरिश्रमाः वैयाकरणाः दरीदृश्यन्ते। तुलनात्मकाध्ययनेन यद् वैभिन्न्यं प्राप्यते तदिदं विद्यते यत् प्राचीनकाले गुरोः

Scanned with CamScanner

सामीप्यमासीद् इदानीं तत् नास्ति । गुरोः सामीप्यकारणात् दूरीवशाच्च यौ लाभालाभौ वर्तेते तयोः दर्शनं साम्प्रतम् अस्माभिः क्रियते । पुराकाले व्याकरणक्षेत्रे स्त्रीपुरुषयोर्मध्ये कोपि भेदभावो नासीत् । कारणं यत् तदानीन्तने कालेऽपि स्त्री विदुषी प्राप्यते स्म।

सन्दर्भसूचयः -

१. स्त्रियां क्तिन् - ३/३/९४ । २. पपारितो भाष्यते अनया ।
३. अव्ययीभावः समासः ४. वक्यपदीये कारिकासंख्या - ४ ।
५. तत्रैव कारिकासंख्या १ ।
६. काव्यादर्शे, प्रथमपरिच्छेदे श्लोकसंख्या -४ ।
७. वाक्यपदीये कारिकासंख्या -१२ ।
८. तत्रैव कारिकासंख्या - १० । ९. तत्रैव कारिकासंख्या - ७ ।
१०. तत्रैव कारिकासंख्या - ११ । ११. तत्रैवे कारिकासंख्या - ९ ।
१२. तत्रैव कारिकासंख्या - १३ ।
१३. पाणिनीय-अष्टाध्यायी-सूत्रपाठे ५/१/९४ ।
१४. तत्रैव ५/२/१३४ । १५. तत्रैव ४/४/६२ ।
१६. काशिकायां छत्रादिभ्यो णः सूत्रस्य वृत्तौ ।
१७. तत्रैव।
१८. काशिकायां भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा- ३/४/६८ सूत्रस्य वृत्तौ ।
१९. तत्रैव।
२०. पाणिनीय -अष्टाध्यायी-सूत्रपाठे - ६/२/१०४ ।
२१. लघुसिद्धान्तकौमुद्याम् "उपमानादाचारे" - (३/१/१०) सूत्रे ।
२२. पाणिनीय -अष्टाध्यायी-सूत्रपाठे - ३/३/१२२।

—०—

अध्यक्षः, व्याकरणसङ्कायः, श्रीसोमनाथसंस्कृतयुनिवर्सिटी,
वेरावल, गुजरात- ३६२२६१

Scanned with CamScanner

ISSN 2249 - 2313

षाण्मासिकी संस्कृतशोधपत्रिका
Half Yearly Sanskrit Research Journal
Vol. IX Apr,2016 - Sept,2016 No.1
वर्षम् – ९, अप्रैल २०१६ – सितम्बर २०१६, अङ्कः – प्रथमः

प्राचीसुधा

PRACI SUDHA

"प्राचीसुधा" सुललिता बहुशास्त्रतत्त्व-
पूर्णा जगज्जनहिताऽखिललोकमान्या ।
आख्यायिकीं सुखकथां परिवेषयन्ती
संराजतां निरभिमानबुधेषु नित्यम् ॥

सम्पादकः सञ्चालकश्च
डॉ.विश्वनाथस्वाईं

पुरुषोत्तमप्राच्यविद्याशोधप्रतिष्ठानम्, पुरी, ओड़िशा
PURUSOTTAM RESEARCH ACADEMY OF INDOLOGY
PURI, ODISHA

Scanned with CamScanner

विषयसूची

पृष्ठाङ्काः	विषयाः	लेखकाः
३.	को वामनः	महामहोपाध्यायखिपाठी डॉ.सुधाकराचार्यः
४.	आधुनिकयुगेऽभिज्ञानशाकुन्तलस्य प्रासङ्गिकता	डॉ.पूनमलखनपाल
८.	वैदिकवाङ्मये पर्जन्यदेवः	डॉ.शत्रुघ्नपाणिग्राही
१३.	ईशावास्योपनिषदि मोक्षः	डॉ.विजकुमारः
१४.	ब्रह्मसूत्रे पुनर्जन्म	डॉ.दिनेशपालः
१५.	स्कान्दी उत्क्रान्तिः	डॉ.सन्तोष कुमारी
१६	श्रीनिम्बार्काचार्यद्वैताद्वैतमते पदार्थविमर्शः	कैलाशचन्द्रमिश्रः
१९.	भासनाटकेषु गुप्तचरप्रबन्धनम्	डॉ.जयप्रकाशनारायणः
२२.	गरुडमहापुरणेऽन्तराभवः	डॉ.राजबीरः
२५.	वामनपुराणे मूर्त्तिकला	श्रीमती पारुल मित्तल
२६.	माहेश्वरसूत्राणां वेदमूलकत्वम्	प्रो.विनोदकुमार झा
३१.	शरीरतत्त्वम्	डॉ.युधिष्ठिरसाहुः
३४.	संस्कृतकाव्येषु योगतत्त्वचर्च्चा	डॉ.वसन्तकुमारमिश्रः
३७.	सामवेदे वैश्विकशान्तिः	प्रो.चन्द्रशेखरमिश्रः
४१.	दैनन्दिनजीवने लोकाचारः	माखन दासः
४७.	उपनिषत्सु शिक्षणपद्धतयः	डॉ.निर्मलापाणिग्राही
५१.	प्राचीनभारते प्रोद्योगिकी शिक्षा	डॉ.वृन्दावनपात्रः
५७.	संस्कृत-वाग्योगाः	डॉ.कर्णसिंहः
६१.	श्रीजगन्नाथनवकलेवरब्रह्मकमलस्तोत्रम्	पं.वेणुधरपरिड़ा
६४.	साहित्ये स्मृत्यालोकः	डॉ. जयश्री चट्टोपाध्यायः
६८.	वामनपुराणे सरस्वती	डॉ.संगीता अग्रवाल
७०.	कृदन्ते वाक्यविज्ञानम्	बाञ्छानिधि खमारी
७२.	धर्मस्थानं कोणार्कतीर्थक्षेत्रम्	डॉ.दयानिधिमिश्रः
७६.	Declaration	

—o—

Scanned with CamScanner

माहेश्वरसूत्राणां वेदमूलकत्वम्
(लघुशब्देन्दुशेखरस्य परिप्रेक्ष्ये)

प्रो. विनोदकुमार झा

यथा वयं जानीमो यत् वैयाकरणसिद्धान्तकौमुद्या व्याख्या प्रौढमनोरमाग्रन्थे विद्यते । यथा - प्रौढमनोरमायाः मङ्गलाचरणं-

"ध्यायं ध्यायं परं ब्रह्म स्मारं स्मारं गुरोर्गिरः । सिद्धान्तकौमुदीव्याख्यां कुर्मः प्रौढमनोरमाम् ।।" तथैव प्रौढमनोरमाया अंशविशेषं स्वीकाराद् अंशविशेषाचास्वीकारात् मनोरमोमार्द्धदेहस्य लघुशब्देन्दुशेखरस्य रचयित्रा महावैयाकरणेन नागेशभट्टेन सिद्धान्तकौमुद्याः प्रतीकं "माहेश्वराणि" इत्यादाय पूर्वं जिज्ञासा कृता यदाम्नायसाम्नायशब्दयोर्वेदस्यैव कृते प्रयोगो दृश्यते, चतुर्दशसूत्र्यामप्ययं व्यवहारो दृश्यते, किमयं व्यवहारो युक्त आहोस्विद् अयुक्तः ? न च "चन्द्रोदये विताने च स्यादाम्नायोऽन्वये श्रुतौ"[१] इति कोशाद् आम्नायशब्दस्य नानार्थकत्वेन "चतुर्दशसुत्र्याम्" अप्याम्नायशब्दस्य प्रयोगः स्यादिति वाच्यम्, आम्नायशब्दस्य नानार्थकत्वेऽपि "चतुर्दशसुत्र्याम्" आम्नायशब्दस्य प्रयोगाऽप्रसिद्ध्या वेदार्थकत्वस्यैव प्रसिद्धेः ।

अत्र शेखरः–ननु चतुर्दशसूत्र्यामक्षरसमाम्नाय इति व्यवहारानुपत्तिः, आम्नायसाम्नायशब्दयोर्वेदे एव प्रसिद्धेः ? इत्यत आह-माहेश्वराणीति । महेश्वरादागतानीत्यर्थः । महेश्वरप्रसादलब्धानीति फलितम् । एवञ्चैवभानुपूर्विका श्रुतिरेवैषा । तत्प्रसादात् पाणिनिना लब्धा । श्रुतिमूलकत्वादस्यैव वेदाङ्गत्वम्[२]। चतुर्दशसूत्राणि महेश्वरप्रसादलब्धानि सन्ति, न तु प्रोक्तानि । "महेश्वर" शब्दात् "तत आगतः"[३] इति सूत्रेण अण्प्रत्ययः महेश्वरादधिगतानीति । पाणिनिव्याकरणमपि वेदाङ्गत्वेन मन्यते, यतो हि व्याकरणस्यास्य महेश्वरप्रसादलब्धा चतुर्दशसूत्री श्रुतिरेव । भगवतः पाणिनेः सूत्राणां प्रायेण प्रत्याहारद्वारा प्रयोगसाधुत्वसम्पादकत्वेन प्रत्याहारस्य च वर्णसमाम्नायमूलकत्वेन श्रुतिमूलकत्वमस्य पाणिनिव्याकरणस्य । अत एव अस्य वेदाङ्गत्वे न संशयः । "अस्यैव वेदाङ्गत्वम्" इति मूले एवकारोऽप्यर्थको बोध्यः । यथा "घटे एव प्रसिद्धः", "अयमेव तदन्तविधिं ज्ञापयति" इत्यादौ एवकारस्य अप्यर्थकत्वम् । तथाऽत्रापि ।

केचित् विशेषणसङ्गतमेवकारं वर्णयन्तः पाणिनिव्याकरणस्यैव वेदाङ्गत्वं मन्यन्ते । तत् तु वाग्विलासमात्रम् । "अस्यैव" इत्यत्र उपादीयमानस्य एवकारस्य

विशेषणसङ्गतत्वप्रतिपादनमपि भ्रममूलकम्, एवकारस्य विशेष्यसङ्गतत्वेन विशेषणसङ्गतत्वाभावात् । अन्यत्रपठितस्य एवकारस्य अन्यत्रसन्निवेशेन अर्थाभिधाने महती अनर्थपरम्परा उदीयात् । श्रुतिमूलकत्वात् पाणिनीये व्याकरणे वेदाङ्गत्वशङ्काऽपि नास्ति इत्याशयेन "अस्यैव वेदाङ्गत्वम्" इत्युक्तम् । अन्यथा श्रुतिमूलकतया अस्यैव वेदाङ्गत्वमिति कल्पनायां तु ज्योतिषादेः वेदाङ्गत्वानापत्तेः, तस्य श्रुतिमूलक-त्वाभावात्[४]।

शेखरकृता पाणिनिशिष्यप्रणीतायाः पाणिनिशिक्षायाः प्रमाणमप्युद्धृतम् -

"येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात् ।
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः[५] ।।"

महेश्वर आचार्यः । अत्र प्रमाणम् - "लण्सूत्रे णकारविषयाचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति - व्याख्यानत इति"[६] इत्यादौ आचार्यपदेन महेश्वरः । अनुबन्धाश्च महेश्वरकृता एवेत्यनुपदमेव स्फुटीभविष्यति ।

अत्रायं प्रश्नः समुपस्थितो भवति यच्चतुर्दशसूत्राणां यदि श्रुतित्वं मन्यते तर्हि तेषां खण्डनं कथं भाष्यकृता कृतम् ? नहि श्रुतेः प्रत्याख्यानं भवति न वा संगतं समाधानं शेखरकृता क्रियते ।

उत्तरम् - अत्र उत्तररूपेण शेखरकारो लिखति - "अमङणनम्" इत्यत्र मकारप्रत्याख्यानपरं भाष्यं किमदृष्टार्थमेव तदुच्चारणमुत दृष्टार्थमपीत्येवं विचारपरम्। सर्वत्र प्रत्याख्यानमेवम्परमेव अन्यथा अङ्गानामपि परायणे धर्मश्रवणेन तत्र पाणिनिव्यासप्रत्याख्यानस्याप्यसङ्गतिः स्यात्[७]।

अतीवरमणीयं व्याख्यानं नागेशभट्टेनात्र सन्दर्भे कृतम् । नागेशभट्टस्येदं कथनं सर्वथा साधु विद्यते, यन्महाभाष्यकारेण सूत्रस्य खण्डनं न कृतम्, अपितु विचारितं यदस्य सूत्रस्य दृष्टफलमर्थात् प्रत्यक्षफलं विद्यते न वा । अप्रत्यक्षफलन्तु विद्यत एव । सर्वत्र महाभाष्ये यत्र सूत्रस्य सूत्रांशस्य वा प्रत्याख्यानं कृतं तत्र अयमेवाशयः । यथा हि वेदपारायणेन पुण्यं भवति, तथैव वेदांगस्य पारायणेनापि पुण्यं जायते पुनः वेदाङ्गव्याकरणावयवसूत्रस्य प्रत्याख्यानं न कथमपि सङ्गतम् । अत्र पुनः नागेशभट्टेन प्रमाणं प्रस्तूयते । तदुक्तं "इको यणचि" सूत्रे –

"सामर्थ्ययोगान्नहि किञ्चिदत्र, पश्यामि शास्त्रे यदनर्थकं स्यात्" ।

किञ्चिद् दृष्टादृष्टार्थवत्, किञ्चिच्छुद्धादृष्टार्थवत्, सर्वथाऽनर्थकं न किञ्चिद् इति तदर्थः । वृद्धिसूत्रस्थे "वर्णेनाप्यनर्थकेन न भवितव्यम्" इति भाष्यग्रन्थेऽनर्थकत्वं, बोध्यार्थकत्वं, बोध्यार्थराहित्यरूपमिति न निष्प्रयोजनस्वरूपानर्थक्येन तत्र तत्र

Scanned with CamScanner

प्रत्याख्यानपरभाष्याऽसङ्गतिः[९]। अर्थात् अर्थरहितानि वचनानि यथा लोके तथा अत्रापि इति शङ्कायाः निरासाय भाष्यकृता एको वर्णोऽप्यनर्थकोऽत्र शास्त्रे नास्ति, सूत्रस्य तु आनर्थक्यस्य का चर्चा । प्रत्याख्यानस्थलेऽपि बोध्यार्थराहित्यरूपमानर्थक्यं नास्ति इति न क्वचिदपि बोध्यार्थराहित्यरूपमानर्थक्यमित्यभिप्रायकेण "वर्णेनाप्यनर्थकेन न भवितव्यम्" इत्यनेन न विरोधः[१] ।

भाष्यकृता यदि खण्डनदृष्ट्या प्रत्याख्यानं कृतं स्यात्तर्हि "इको यणचि" इति सूत्रे तेनेदं न कथितं स्यादत्र सामर्थ्ययोगात् साधुत्वप्रतिपपादने शक्तत्वात् लेशमात्रमपि अनर्थकं नास्ति । किञ्चित्सूत्रं दृष्टादृष्टार्थवत्, किञ्चिच्छुद्धादृष्टार्थवद् भवति, सर्वथाऽनर्थकं = व्यर्थं नं किमपि विद्यते । एवं विचार्य शुद्धाऽदृष्टार्थमेवेत्येवं परम् । अग्रे शेखरकृता पुनरुच्यते ।

अतएव "सोऽयमक्षरसमाम्नायः पुष्पितः फलितश्चन्द्रतारकवत् प्रतिमण्डितो ब्रह्मराशिः" इति भाष्यमुपादायोक्तं भर्तृहरिणा - "यथैवेदमव्युच्छिन्नं चन्द्रतारकादि, एवमस्याक्षरसमाम्नायस्य न कश्चिद् आधुनिकः कर्त्ताऽस्ति, एवमेव वेदपारम्पर्येण स्मर्यमाणः" इति । आधुनिकः शरीरी । पुष्पितत्वं तन्मूलकशब्दशास्त्रद्वारेण शब्दप्रयोगेण च फलितत्वम् । उक्तञ्चैच्चतुर्दशसूत्रव्याख्यायां नन्दिकेश्वरकृत-काशिकायाम् –

"नृत्तावसाने नटराजराजो, ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम् ।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धान् एतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम् [१०]।।

पुनश्च - "अत्र सर्वत्र सूत्रेषु अन्त्यं वर्णचतुर्दशम् । धात्वर्थं समुपादिष्टं पाणिन्यादिष्टसिद्धये।।" अर्थात् धात्वर्थं = धातुमूलकशब्दशास्त्रप्रवृत्त्यर्थम् "अनुबन्धकरणार्थश्च वर्णानामुपदेशः" इत्युक्तं भाष्ये । अत्र करणशब्दप्रयोगेण अनुबन्धानां सादित्वं सूचितम् । तत्कारणञ्च उपदेशकर्तृकमेव, प्रत्यासतेः । तेन अनुबन्धव्यतिरिक्तस्य सर्वस्य अनादित्वं सूचितम् [११]।

माहेश्वरसूत्राणां विषये नागोकृतमिदं प्रामाणिकं व्याख्यानं सर्वातिशायि विद्यते। माहेश्वरसूत्रविषयकं भाष्यकृतव्याख्यानमेव भर्तृहरिणापि विशेषरूपेण व्याख्यातम्। "पुष्पितः फलितः" इति सिद्धक्रियाद्वयमत्र । प्रथमं पुष्पमायाति, ततः फलमुद्भूतं भवति । पुष्पं विना फलं न संभवति । अपवादरूपेण यदि क्वचिद् उदुम्बरादौ दृश्यते तदन्यत् । यथा - ब्रह्मराशिः यथा चन्द्रतारकादिभिः शोभते अर्थात् ब्रह्मणः एव ऐश्वर्यद्योतकाश्चन्द्रतारकाः, तथैव माहेश्वरसूत्राण्यपि शब्दब्रह्मणः सन्तीति । भर्तृहरिणा यदुक्तं तत्स्पष्टतरम् । अस्याक्षरसमाम्नायस्य कोपि मनुष्यः कर्ता नास्ति। माहेश्वरसूत्रमूलकं पाणिनीयं व्याकरणम्,

व्याकरणमूलकमेव शब्दप्रयोगः शब्दसाधुत्वज्ञानम् । एतच्चतुर्दशसूत्रव्याख्यायां नन्दिकेश्वरकृतकाशिकायां एतत्पद्यमुक्तम् । अत्र "ननाद" इत्यन्तर्भावितण्यर्थो तद्धातुः। ढक्कां नादयामास। नवपञ्चवारं चतुर्दशकृत्वः । एतच्छिवढक्कोत्थितं वर्णजालं शिवसूत्रजालतया विमर्शे = जानामि । आर्षस्तङ् । केचित्तु विमर्शे = परामर्शे सति शिवसूत्रसमूहः प्रकटित इत्थं कुर्वन्ति ।

नैयायिकमते वेदस्यापीश्वरकृतत्वान्महेश्वरेण प्रोक्तानीत्यर्थेऽपि न वेदत्वहानिः। चतुर्दशसूत्र्याः ज्ञाने सर्ववेदपरायणजं फलं भाष्ये उक्तम् । व्याकरणमुपक्रम्य "वेदानां वेदः" इति छन्दोगश्रुतिरपि एतत्परैवेति [१२]। अग्रे शेखरकृता अत्र=चतुर्दशसूत्रेषु सनकाद्युद्धरणेच्छयाऽस्य ब्रह्मोपदेशरूपत्वं सूचितम्। तच्च श्रुतित्वाभावे न संगच्छते । "श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यः" इत्युक्तेः [१३]। अर्थात् श्रुतिवाक्येभ्यः = वेदवचनेभ्यः श्रोतव्य = उपदेशो ग्राह्यः ।

ऋक्तन्त्रव्याकरणे शाकटायनोऽपि -"इदमक्षरच्छन्दो वर्णशः समनुक्रान्तं यथाऽऽचार्या उचुः - ब्रह्मा बृहस्पतये प्रोवाच, बृहस्पतिरिन्द्रायेन्द्रो भरद्वाजाय, भरद्वाजः ऋषिभ्यः, ऋषयो ब्राह्मणेभ्यः, तं खल्विममक्षरसमाम्नायमित्यपेक्षते, न भुक्त्वा न नक्तं प्रब्रूयाद्, ब्रह्मराशिः इति । ब्रह्मराशिरित्यस्य ब्रह्मप्रतिपादको ब्रह्मराशि-रित्यर्थः[१४]।

अत एव "वृत्तिसमवायार्थो वर्णानामुपदेशः कर्तव्यः" इति भाष्ये उक्तम्। पाणिनेर्लाघवेन शास्त्रप्रवृत्तिफलको यः समवायः=वर्णानां क्रमेण सन्निवेशस्तदर्थ इति तदर्थ=वर्णानाम् उपदेशः = उच्चारणम् । स च उणादिप्रत्याहारद्वारा शास्त्रप्रवृत्त्यर्थः । एवञ्च अयम् उपदेशः पाणिनेरन्यकृत इति स्पष्टम् । मन्त्रोपदेश इतिवच्चात्रोपदेशपदप्रयोगः।

"एषा ह्याचार्यस्य शैली लक्ष्यतुल्यजातीयांस्तुल्यजातीयेषूपदिशति अचोऽक्षु हलो हल्षु[१५]" इत्यत्र आचार्यपदेन अनादिपुरुषो गृह्यते इति चिदस्थमालाकारः । सम्भवतः अनादिपुरुषः अर्थात् भगवान् महेश्वरः ।

एवं हि माहेश्वसूत्राणां श्रुतित्वं नागेशभट्टेन साधितम् । तत्र महाभाष्य-वाक्यपदीयनन्दिकेश्वरकृतकाशिकापाणिनीयशिक्षा-ऋक्तन्त्रव्याकरणादीनां व्याख्यानानि प्रमाणत्वेनोपन्यस्तानि । वस्तुतः नागेशस्य कथनं सत्यमेव । सर्वेऽपि पौरस्त्यपाश्चात्यभाषाविदः आश्चर्यान्विताः सन्ति यत् संस्कृतव्याकरणस्याधारभूतानि माहेश्वरसूत्राणि केन प्रकारेण व्याकरणनिर्माणे सहायकानि सन्ति । नाऽयं मानवमष्तिकस्य वा विकासवादस्याविष्कारः परिणामो वा अवश्यमेवापौरुषेय-त्वमेतेषाम् ।

केचित्तु एतस्याः शिक्षायाः पाणिनिसम्मतत्वे प्रमाणाभावः, इति

Scanned with CamScanner

वर्णसमाम्नायस्यापि कर्ता पाणिनिरेव अस्य महेश्वरकर्तृकत्वं भाष्ये क्वापि नोपन्यस्तमिति कथयन्ति ।

सन्दर्भसूची -

१. विद्यावाचस्पतेः श्रीब्रह्मदत्तद्विवेदीमहोदयस्य राधिका संस्कृत-हिन्दीव्याख्याद्वयोपेते लघुशब्देन्दुशेखरे, पृष्ठसंख्या -१९ ।

२. आचार्य-विश्वनाथशास्त्रिणः हिन्दीटीकोपेते लघुशब्देन्दुशेखरे, पृष्ठसंख्या - ११।

३. पाणिनि-अष्टाध्यायीसूत्रपाठः ४/३/७४ ।

४. राधिका संस्कृतहिन्दीव्याख्याद्वयोपेते लघुशब्देन्दुशेखरे, पृष्ठसंख्या-२० ।

५. पाणिनीयशिक्षा - ५७ ।

६. व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि सन्देहादलक्षणम् इति परिभाषोपरि ।

७,८. आचार्यविश्वनाथशास्त्रिणः हिन्दीटीकोपेते लघुशब्देन्दुशेखरे, पृष्ठसंख्या-११।

९. राधिका संस्कृतहिन्दीव्याख्याद्वयोपेते लघुशब्देन्दुशेखरे, पृष्ठसंख्या-२२ ।

१०. आचार्यविश्वनाथशास्त्रिणः हिन्दीटीकोपेते लघुशब्देन्दुशेखरे, पृष्ठसंख्या - ११,१३, १४ ।

११. आचार्यविश्वनाथशास्त्रिणः हिन्दीटीकोपेते लघुशब्देन्दुशेखरे, पृष्ठसंख्या - १४।

१२. आचार्यविश्वनाथशास्त्रिणः हिन्दीटीकोपेते लघुशब्देन्दुशेखरे, पृष्ठसंख्या - १५।

१३. आचार्यविश्वनाथशास्त्रिणः हिन्दीटीकोपेते लघुशब्देन्दुशेखरे, पृष्ठसंख्या - १४।

१४. आचार्यविश्वनाथशास्त्रिणः हिन्दीटीकोपेते लघुशब्देन्दुशेखरे, पृष्ठसंख्या -१५।

१५. आचार्यविश्वनाथशास्त्रिणः हिन्दीटीकोपेते लघुशब्देन्दुशेखरे, पृष्ठसंख्या - २५।

—०—

अध्यक्ष-व्याकरण विभाग
श्रीसोमनाथ संस्कृत युनिवर्सिटी,
वेरावल, गुजरात-३६२२६६

Scanned with CamScanner

प्रारम्भाब्दः १९६४ ई.तः

ISSN 2348-9847

सुरभारती

वर्षम् - ५२

अङ्कः ५२

(शताब्दी विशेषाङ्कः)

वार्षिकी शोधपत्रिका २०१५ -१६

पारम्परिकसंस्कृताध्ययनविभागः

बरोडासंस्कृतमहाविद्यालयः

महाराजसयाजीरावविश्वविद्यालयःवटोदरम्

Scanned with CamScanner

अनुक्रमणिका

विषयाः	लेखकाः	पृ.सं.
	शुभसंदेशः कुलाधिपतिः	
	शुभसंदेशः कुलपतिः	
	शुभसंदेशः प्रधानसम्पादकः	
Note From th Chief Editor		
संपादकीयम्		
१. उब्बटप्रयुक्तव्याख्यापद्धतिविश्लेषणम्	प्रो. देवेन्द्रनाथ पाण्डेयः	१
२. कालिदासस्य वैश्विकं चिन्तनम्	डॉ. तुलसीदास परीहा	५
३. उपनिषत्सु शैक्षिकदर्शनम्	जानकीशरणः	१२
४. वैदिकशिक्षाव्यवस्थायाः साम्प्रतकाले उपादेयता	डॉ. भावप्रकाश एम.गांधी	२२
५. आधुनिकशिक्षायां वैदिकशिक्षायाः प्रभावः	डॉ. शत्रुघ्नपाणिग्रही	२७
६. बुद्धियोगः	डॉ. कृष्णप्रसाद निरौला	३१
७. अन्योन्याश्रदोषपरिहारविचारः	प्रो. विनोदकुमार झा	३६
८. आम्नायसम्मतं समभावसमीक्षणम्	डॉ. प्रयागनारायण मिश्र	४१
९. समालोचना	डॉ. रामपाल शुक्ल	४६
१०. आख्यानपरम्परायाम् महाभारतस्य व्याप्ति	प्रो. हरिप्रसाद पाण्डेयः	४८
११. तन्त्रज्ञो महामुनिः पाणिनिः	क्षितीश्वर नाथ पाण्डेय	५३
१२. वर्तमानसामाजिकविषङ्गतिसमाधाने संस्कृतसाहित्यस्य प्रासङ्गिकता	डॉ. अमृतलालः भोगायता	५७
१३. सत्यव्रतशास्त्रिप्रणीते श्रीरामकीर्तिमहाकाव्ये विशेषच्छन्दोवलोकनम्	डॉ. ललित पटेलः	६०

Scanned with CamScanner

ISSN 2348-9847

अन्योन्याश्रयदोषपरिहारविचारः

प्रो. विनोद कुमार झा

चतुर्दशसूत्रेषु णकारादयन्तवर्णानां 'एषामन्त्या इतः' इति वाक्येन इत्संज्ञा प्रतिज्ञाता । सा च इत्संज्ञा णकारादयन्तवर्णानां 'हलन्त्यम्' इति सूत्रेण वक्तव्या । 'हलन्त्यम्' इति सूत्रस्य वृतिः हल्पदार्थज्ञानान्तरमेव सम्भवति । हल्पदार्थज्ञानं, चतुर्दशे माहेश्वरसूत्रे 'हल' इत्यस्मिन् लकारस्य इत्संज्ञायां सत्यां 'आदिरन्त्येन सहेता' (१/१/७१) इति सूत्रेण 'हल' प्रत्याहारनिर्माणानन्तरं भवतुमर्हति । 'आदिरन्त्येन सहेता' सूत्रेण 'हल' इत्यस्मिन् महेश्वरसूत्रे लकारस्य 'हलन्त्यम्' (१/१/३) इति सूत्रेण इत्संज्ञायां सत्यां भवितुमर्हति । एवम्प्रकारेण 'हलन्त्यम्' सूत्रस्य ज्ञानं 'आदिरन्त्येन सहेता' सूत्राधीनमस्ति तथा च 'आदिरन्त्येन सेहता' सूत्रस्य ज्ञानं 'हलन्त्यम्' सूत्राधीनमस्ति, तस्मादस्ति स्वज्ञप्त्यधीनज्ञप्तिकत्वम् अन्योन्याश्रयत्वम् इत्यनुरोधेन परस्परम् अन्योन्याश्रयः।

एवम्प्रकारेण 'हलन्त्यम्' इति सूत्रस्य वाक्यार्थबोधाय 'हल्' पदार्थस्य ज्ञानम् आवश्यकं तदर्थञ्च लकारस्य इत्संज्ञा । 'हल्' पदार्थस्य ज्ञानाय आवश्यकी लकारस्य इत्संज्ञां विधातुं 'हलन्त्यम् 'सूत्रं दविरावृत्य आवृत्तेन हलन्त्यम् (१/३/३) इति सूत्रेण 'हल्' इत्यस्मिन् चतुर्दशे माहेश्वरसूत्रे लकारस्य इत्संज्ञा क्रियते ।एकपदात्मकमिदं सूत्रमस्ति । लकारस्य इत्संज्ञानन्तरं 'आदिरन्त्येन सहेता' इति सूत्रेण 'हल्' प्रत्याहारनिर्मिते ज्ञाते च उपदेशावस्थानां अन्त्यस्य हल् 'हलन्त्यम् ' इति सूत्रेण इत्संज्ञा भवति । एवं रीत्या अन्योन्याश्रयदोषस्य परिहासो जायते ।

अत्र आवृत्ते एकपदात्मके 'हलन्त्यम्' इति सूत्रे कः समासरिति जिज्ञासायां उच्यते हलि अन्त्यमिति हलन्यत्यम् । सप्तमीतत्पुरुषसमासोऽत्र । न च हलिअन्त्यमिति हलन्त्यम् इत्यत्र 'सप्तमी शौण्डै' इति सूत्रस्य योगविभभागान्तरं योगविभागेन 'सप्तमी' इति सूत्रेण समासःकरणीयमिति वाच्यम् , योगविभागस्य भाष्येऽदर्शनात् । नैव 'सुप्सुषां' इति सूत्रेण भवेदिति वाच्यम् तस्य यस्य कुत्रापि न गतिः तस्य काश्यां गतिरिवअगति कगति त्वात् । अतः हलोऽन्त्यमिति हलन्त्यम् अत्र 'षष्ठी' इति सूत्रेण षष्ठीतत्पुरुषसमासो ज्ञेयः । 'हलन्तय्म्' सूत्रे एकदेशस्य हल् इत्यस्य तन्त्रावृत्येशेषेषु अन्यतमः स्यादिति । सकृदुच्चरितत्वं सति अनेकार्थ बोधकत्वं तन्त्रलम् ।

लघुशब्देन्दुशेखरेऽपि उक्तमस्ति यत् न विभक्तौ तुस्माः इत्यादेः सार्थक्याय 'हलन्त्यम्'इति सूत्रस्य उपदेशेऽन्त्यं हल् इत् स्यात् इत्यर्थस्य आवश्यकत्वेन 'हलन्त्यम्' 'आदिरन्त्येन सहेता' इत्यनयोरुपर्युक्तरीत्या परस्परापेक्षत्वेन अन्योन्याश्रयात् , लकारे इत्संज्ञाम् अबोधयित्वा हलाम् इत्संज्ञाबोधनं पाणिनेरयुक्तम् , अतः महाभाष्ये अन्योन्याश्रयमाशङ्क्य 'हलन्त्यम्' इत्सञ्ज्ञं भवति , लकारश्चेद्भवतीति वक्तव्यमित्युक्त्वा-एकशेषनिर्देशाद्वा सिद्धम् हल्·च हल् च हल्-हलन्त्यमित् इत्युक्तम् । तस्यायं भावः 'कृतेकशेषेण हल्पां सम्बन्धसामान्यषष्ठ्या समामोऽन्त्यशब्दस्य च द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणस्येवोभयत्रान्वयः एवञ्च हल्सूत्रान्त्यं

Scanned with CamScanner

हलूपान्त्यञ्चेति बोधः अन्त्ये राहोः शिरः इतित्षष्ठी''ति । अत्रोच्चारयितुरेकशेषनिर्देशो बोद्धुस्त्वावृत्या बोधः अर्थात् महाभाष्ये महाभाष्यकारो भगवान् पतञ्जलिः 'हलन्त्यम्' इति सूत्रोपरि अन्योन्याश्रयम् आशङ्क्य अन्त्यस्य हल इत्संज्ञा भवति तथा च लकारस्य इत्संज्ञा भवतीति उक्तवान् । एवं कथं सम्भवति इति प्रश्ने महाभाष्यकारेण उच्यते -एकशेषनिर्देशेन एवं सम्भवति अर्थात् 'हलन्त्यम्' सूत्रे हलि पदे पाणिनिना एकशेषः कृतोऽस्ति। हल् च हल् च हल् एवम्प्रकारेण एकशेषनिर्देशेन एकस्मिन् हल्पदे हल्द्वयं वर्तते । अत्र एकेन हला हल् प्रत्याहारस्य तथा द्वितीयेन हला चतुर्दशं माहेश्वरसूत्रं 'हल्' इति गृह्यते । एकशेषानन्तरं हलि पदे सम्बन्धसामान्ये भेदबोधिकां षष्ठीं विभक्तिं विधाय 'षष्ठी' इति सूत्रेण षष्ठ्यन्तस्य हल् डस् इति समर्थसुबन्तस्य अन्त्य सुं इति समर्थसुबन्तेन सह षष्ठीसमासानन्तरं द्वन्द्वादौ द्वन्द्वमध्ये द्वन्दवान्ते च श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिम्बध्यते इत्यनुसारं द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणस्य अन्त्यशब्दस्य प्रत्येकं हला सह अन्वयो भवति । न च 'हल' पदेन प्रत्याहारे स्वीकृते हल् एव अन्त्यं वर्तते अन्त्यमेव हल् वर्तते, तस्माद् हलन्त्ययोः पदयोर्मध्ये अभेदान्वयाद् भेदख्यापिव षष्ठी विभक्तिः षष्ठीतत्पुरुषसमाश्च कथं भवितुं शक्नोतीति वाच्यम् । अन्त्येन 'हल्' प्रत्याहारबं अन्त्यशब्दस्य राहोः शिरः इतिवत् अन्वयात् । अर्थात् हलि स्वनिरूपितावयवत्स्य आरोपः क्रियते , ये हल्पवादच्ये अवयविता अन्त्यपदवाच्ये अवयवता च उत्पन्ना भवति । उच्चारयिता तु एकशेषेण निर्देशं कर्तुं शक्नोति , परं बोधधुस्तु आवृत्या बोधो भवति, तस्मात् उभयविधस्य हल्पदस्य अन्त्यशब्देन सह समासनन्तरं 'हलन्त्यम्' 'हलन्त्यम्' इति आवृत्या बोदधुर्बोधो भवति । तत्र प्रथमेन हलन्त्यम् सूत्रेण हल् सूत्रस्थस्य लकारस्य इत्संज्ञा, आदिरन्त्येन सहेता इति सूत्रेण लकारेण सह हल् प्रत्याहारस्य सिद्धिस्तथा द्वितीयेन 'हलन्त्यम्' सूत्रेण उपदेशावस्थायाम् अन्त्यस्य हलः इत्संज्ञा क्रियते, येन अन्योन्याश्रयदोषः परिहियते ।

प्राप्तं हल् हस्य ल इति षष्ठीसमासः सामीप्यञ्च षष्ठयर्थीरिति महावैयाकरणेन कैयटेन मन्यते, किन्तु तथा सति महाभाष्ये हल् इत्संज्ञ भवति, हलन्त्यञ्चेदिति उल्लिखितं भवेत् । सामीप्यं षष्ठ्यर्थीरिति स्वीकारे ब्राह्मणस्य कम्बलरिति ब्राह्मणकम्बलरित्यादौ ब्राह्मणसमीपवर्तिन अन्यदीयकम्बलस्यापि प्रतीतिः प्राप्नोति या लोकव्यवहारे न दृश्यते । एवमेव चित्रा गाव अस्येति चित्रगुरित्यत्र चित्रगवीणां समीपवर्तिन वृक्षादेः प्रतीतिः प्राप्नोति, किन्तु एषा प्रतीतिरपि लोकव्यवहारे अनुपलभ्यते न केवलं समासे ब्राह्मणस्य कम्बलरिति व्यस्तप्रयोगेऽपि ब्राह्मणसमीपवर्तिनः अन्यदीयकम्बलस्य प्रतीतिर्न भवति । नैव चित्रा गाव अस्येति व्यस्तप्रयोगेऽपि समीपवर्ती वृक्षादिः प्रतीयते, अतः सामीप्यं षष्ठ्यर्थीरिति स्वीकर्तुमप्यशक्योऽस्ति ।

हल् च ल् चेति हल् इति समाहारद्वन्दवः । द्वितीयलकारस्य संयोगान्तस्य लोपः इति सूत्रेण संयोगान्तलोपः षष्ठीसमासः 'हलन्त्यम् ' सूत्रेण हल् सूत्रस्थस्य लकारस्य च इत्संज्ञाया सत्यां उपर्युक्तप्रकारेण अन्योन्यश्रयदोषपरिहार स्यादिति वाच्यम् यणः प्रतिषेधो वाच्यः'' इति वार्तिकेन यणः लोपस्य प्रतिषेधेन संयोगान्तलोपस्य दुर्लभत्वात् । यणः प्रतिषेधो वाच्यः इति वार्तिकस्य प्रत्याख्यानपक्षेऽपि 'झलो झलि' इति सूत्राद झल्ग्रहणमपकृष्य संयोगान्तस्य लोपः इत्यनेन संयोगान्तस्य झलः लोपविधानात् । किञ्च पदार्थबोधं विना वाक्यार्थबोधासम्भवेन हल् प्रत्याहारसिद्धयेः प्राग् 'हलन्त्यम् 'सूत्रस्य वाक्यार्थाऽभावे प्रसक्ते तस्य उद्धाराः आवृत्तिरुपप्रयत्नोऽयं क्रियते । अस्यां परिस्थितौ हल् शब्दार्थाऽप्रसिद्धौ द्वन्द्व एव दुर्लभोऽस्ति, सहविवक्षाया अभावात् तस्मात् अन्योन्याश्रयदोषपरिहाराय आवृत्तिरुपोपाय एव समीचीनोऽस्ति ।

Scanned with CamScanner

'हयवरट्' इत्यतराभ्य 'हल' सूत्रपर्यन्तं दशसूत्राणाम् आवृत्तिं विधाय अनन्तर 'हयवरट' सूत्रादारभ्य 'शषसर' सूत्रपर्यन्तं समुदायमुद् श्य तस्य समुदायस्य 'हल्' इति सूत्रेण हल् इति संज्ञा विधेयेति वाच्यम् दशसूत्रावृत्तौ गौरवात् ।

प्रश्न-अन्योन्याश्रयदोषस्य निदानाय 'उपदेशेऽननुनासिक इत् ' 'हलन्त्यम्' इति सूत्रद्वयस्य स्थाने सूत्रत्रयमस्तु-'उपदेशे इदन्त्यम् 'अच' अनुनासिकः इति । तत्र प्रथमसूत्रस्य अर्थो वर्तते
वस्था अन्त्यस्य वर्णस्य इत्संज्ञा भवेत् । सोऽन्त्यवर्णोऽच् भवेद् हल् वा उभयोरपि ÷इत्संज्ञा स्यात् प्रथमसूत्रेण अन्त्यस्य हलः इत्संज्ञाया सत्यां 'आदिरन्त्येन सहेता' इति सूत्रेण 'अण्' आदिप्रत्याहाराणां सिद्धौ नास्ति कश्चन संशयः । नैन हल् प्रत्याहारस्य सिद्धिकारणादस्ति अन्योन्याश्रयदोष :। द्वितीय सूत्रं विद्धयते ।'अच्' इति सूत्रेण अनन्त्यस्य अच इत्संज्ञा भविष्यति ।न रु श्रु चेत्यादिषु अजन्तेषु उपदेशे इदन्त्यम् इति प्रथमसूत्रेण अन्त्यस्य अच इत्संज्ञा भविष्यति । न रु श्रु चेत्यादिषु अजन्तेषु उपदेशे इदन्त्यम् इति प्रथमसूत्रेण अन्त्यस्य अचः उकारस्य च इत्संज्ञा न भविष्यति , फलाभावादिति वाच्यम् स्वरतिसूतिसूयतिधूञदितो वा इत्यादिसूत्रेण तथा 'उदितो वा' इति सूत्रेण वैकल्पिक इडागमविधानरूपफलस्य सत्वात् । भ रु श्रु चेत्यादिषु अजन्तेषु धातुषु अचः इत्संज्ञा ति? इति प्रश्नः स्वयमेव उत्तरितो भवति यतोहि तृतीयं सूत्रं विद्यते- 'अनुनासिकः' अन्त्यस्य अनन्त्यस्य च उभयविधस्य अचः पूर्वसूत्रद्वयेन इत्संज्ञाया सत्यां तृतीयं सूत्रं व्यर्थीभूय नियम करोति यदि असत्वात् प्रथमसूत्रेण उकारस्य उकारस्य च इत्संज्ञा न जायते ।

त्र अनुनासिकस्य यदि इत्संज्ञा स्यात् तर्हि अच एव स्यादिति विपरीतनियमोऽपि भवितुं शक्नोतीति वाच्यम् ,तथा सति मकारञकारदिहल्वर्णाना इत्संभावात् । अन्यथा विपरीतनियमस्वीकारे सति मिदागमः अन्त्यादचः परो भवेत् इत्यर्थकस्य मिदचोऽन्त्यात् परः इति सूत्रस्य तथा च त्रिति णिति च प्रत्यये परे अजन्ताङ्गस्य वृद्धिः स्याद् इत्यर्थकस्य अचोऽणितिसूत्रस्य व्यर्थता नास्ति दुर्लभा ।

'अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वा' इति परिभाषानुसारं अनुनासिकः इति तृतीयसूत्रेण अनन्तरस्य अर्थात् समीपस्थस्य 'अच्' सूत्रस्यय विषय एव नियमः स्यात् न तु उपदेशे इदन्त्यम् सूत्रस्य विषयेऽपि इति वाच्यम्,योगविभागसामर्थ्येन 'अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वा इति परिभाषायारत्र अप्रवृत्तित्वात् ।अन्यथा यदि अनुनासिकः इति सूत्रस्य नियमः केवलं 'अच् सूत्रस्य विषय एवं स्यात्तर्हि 'अच्' अनुनासिकः इति सूत्रद्वयस्यस्य स्थाने ला अजनुनासिकः इति सूत्रमेकमेव कर

सूत्रद्वयस्य स्थाने यदि सूत्रत्रयं क्रियते चेत् पाणिनिसूत्रभेदो भवति , तस्मात् पाणिनिसूत्रपरायणे या अष्टफलस्य प्राप्तिर्भवति सा भवितुंन शक्नोति तथा च एतत्तात्पर्यबोधकं तत्र तत्र भाष्यमपि वर्तते अपाणिनीयन्तु भवतीति वाच्यम् सूत्रभेदः सः कथ्यते कस्यचित् सूत्रस्य स्थाने अन्यत् सूत्रं क्रियते अथवा अधिकं सूत्रं क्रियते । यदि तदेव सूत्रम् उपसंहृत्य -संक्षिप्त सूत्रं क्रियते नासौ सूत्रभेदः दोषाय भवतीति अच उपसर्गातः सूत्रभाष्ये उक्तत्वात् । अस्य तात्पर्यमिदं वर्तते यत् यदि सम्भवः स्यात् तर्हि दृष्टफलद्वारैव वेदाङ्गानाम् अदृष्टार्थत्वं-

Scanned with CamScanner

पुण्यजनकत्वं कल्पनीयम्, तत्र त ज्ञापकपरसकलभाष्योच्छेदो न ति । एवम्प्रकारेण हल्ग्रहणमपि न कर्तव्यं भवति सहैव अन्योन्याश्रयदोषस्य निवारणमपि जायते ।

उत्तरम्- योगविभागनियमज्ञापकातिश्रणणेऽतिरगौरवात् ।अर्थात् पूर्व सूत्रद्वयस्य स्थाने सूत्रत्रयस्य सम्पादनं सूत्रद्वयेनैव कार्य भवितुं शक्नोति तस्मात् तृतीयं सूत्रं व्यर्थीभूय नियमस्य ज्ञापकं भवति । अनन्तरं योगविभागसामर्थ्याद् विपरीतनियमस्य निराकरणम् एतत्सर्वस्य सम्पादने ज्ञानजनकमनोव्यापाररुपं गौरवं भवति तथा एषा राजाज्ञाऽपि नास्ति यत् वर्णाभिव्यक्तिजनककण्ठाद्यभिघातगौरवमेव आदर्तव्यं विद्यते नतु मानजनकमनोव्यापाररूपं गौरवम् , अत एव अन्योन्याश्रयदोषपरिहाराय 'हलन्त्यम्' सूत्रस्य आवृतिरूपोपाय एव उचितो वर्तते ।

प्रश्न-अन्योन्याश्रयदोषस्य परिहार एवमपि भवितुं शक्नोति यत् आदिरन्त्येन सहेता इति सूत्रे पठितस्य सहेता पदस्य व्याख्यानम् एवम्भवेत सह समन्तात् एति-गच्छति बुद्धिविषयो भवतीति सहेत मध्यमो वर्णः । अत्र सहेता-शब्दः योगरूढो वर्तते । योगशक्त्या सह एति-गच्छति -बुद्धिविषयौ भवति इति र्थस्य प्रतीतिर्भवति तथा रुढिशक्त्या मध्यवर्णाना व शब्दस्य एतत्प्रकारके अर्थस्वीकारे आदिरन्त्येन सहेता इति सूत्रस्य अर्थो भवति-सहेता-मध्यमो वर्णः अन्त्यसहितादसंज्ञकः अणादिसंज्ञको स्यात् । अत्र सहेता-मध्यमो वर्णः संज्ञौतथा आद्यन्तः-अणादिः संज्ञावाचको वर्तते ।आदिवर्णेन अन्त्यवर्णेन च सह मध्यमवर्णानाम् एकबुद्धिविषयतासम्पादेन यस्य प्रत्याहारस्य अपेक्षा भविष्यति तस्य प्रत्याहारस्य आद्यन्ताभ्यां वर्णाभ्यां सह मध्यपातिनां वर्णानां बोधसम्पादनद्वारा हलित्यादीनां प्रत्याहाराणां परिज्ञानेन'हलन्त्यम्' सूत्रस्य वाक्यार्थबोधाय आवश्यकहल्पदार्थस्य ज्ञानसम्भवात् अन्योन्यश्रयदोषो नास्ति ।

उत्तरम- उपर्युक्तप्रकारेण 'आदिरन्त्येन सहेता' इति सूत्रस्य अर्थस्वीकारे सति अन्योश्रयदोष एव नास्ति, तस्माद् महाभाष्ये 'हलन्त्यम्' सूत्रोपरि स्वीकृतरन्योन्याश्रयदोषः तथा च तस्य परिहाराय कृतः प्रयत्नो व्यर्थो भवति । महाभाष्यकारेण कृतः प्रयत्न व्यर्थो न भवति , न्योन्याश्रयदोषपरिहाराय सहेता पदस्य अर्थपरिवर्तनरूपप्रयासोऽसमीचीनो वर्तते । अत एव भगवता पतञ्जलिना सहेता इता इत्यत्र (आइ) पूर्वकात् कटी वी धातौ प्रश्लिष्टात् 'इ' धातोः अथवा दैवादिगणीयात् 'ईङ्' (गतौ) तृच् प्रत्ययो स्वीक्रियते । सहेता इत्यत्र 'ईङ्' (अध्ययने) ईक् (स्मरणे) रपि ग्रहणं नास्ति, तयोः नित्यमेव 'अधि' उपसर्गपूर्वकप्रयोगात् । नैव 'ईण्' (गतौ)धातौः ग्रहणमस्ति, तत्र 'एत्येधत्यूठसु इति सूत्रेण इति सूत्रेम वृद्धिप्रसङ्गात् । योगशक्त्या सहेता मध्यमो वर्णः इत्यर्थस्य लोभोऽपि न भवति । नैन तस्य काऽपि उपयोगिता वर्तते, तस्मात् आसमन्तात् इत्यर्थ- व्यर्थरिव विद्यते । यदि उच्यते सहेता मध्यमो वर्णः इति रूढोऽर्थो विद्यते तर्हि किमपि प्रमाणं नास्ति ।

अतःअन्योन्याश्रयदोषस्य परिहारा श्रीमद्भट्टोजिदीक्षितेन कृतस्य सम्पूर्णस्य 'हलन्त्यम्' सूत्रस्य आवृत्तिरूपोपाय एव उचितौ वर्तते ।

Scanned with CamScanner

सुरभारती

१. ज्ञप्तिः ज्ञानम्
२. पाणिनीय-÷अष्टाध्यायौ सूत्रपाठः
३. पाणिनीय-÷अष्टाध्यायी सूत्रपाठः
४. पाणिनीय-÷अष्टाध्यायौ सूत्रपाठः
५. पाणिनीय-÷अष्टाध्यायौ सूत्रपाठः
६. पाणिनीय-÷अष्टाध्यायौ सूत्रपाठः
७. पाणिनीय-÷अष्टाध्यायौ सूत्रपाठः
८. पाणिनीय-÷अष्टाध्यायौ सूत्रपाठः
९. पाणिनीय-÷अष्टाध्यायौ सूत्रपाठः
१०. पाणिनीय-÷अष्टाध्यायौ सूत्रपाठः
११. पाणिनीय-÷अष्टाध्यायौ सूत्रपाठः
१२. पाणिनीय-÷अष्टाध्यायौ सूत्रपाठः
१३. पाणिनीय-÷अष्टाध्यायौ सूत्रपाठः
१४. पाणिनीय-÷अष्टाध्यायौ सूत्रपाठः

Scanned with CamScanner

प्रारम्भाब्दः १९६४

ISSN 2348-9847

वार्षिकी शोधपत्रिका

वर्षम् - ५४-५५

२०१७-२०१८

२०१८-२०१९

(संयुक्ताङ्कः)

अङ्कः ५४/५५

सुरभारती

सत्यं शिवं सुन्दरम्

Estd. 1949

पारम्परिकसंस्कृताध्ययनविभागः

बरोडा संस्कृतमहाविद्यालयः

महाराजसयाजिरावविश्वविद्यालयः, वटोदरम्

Scanned with CamScanner

।।अनुक्रमणिका।।

	विषयाः	लेखकाः	पृ.सं.
	प्रधानसम्पादकीयम्	प्रो. आर.सी. पटेल	
	सम्पादकीयम्	डॉ. रामपालः शुक्लः	

शोधलेखाः

१.	उपनिषत्सु सुखसंविमर्शः	डॉ. प्रयागनारायणमिश्रः	१-५
२.	वैदिकवाङ्मये ऋषिशब्दविमर्शः	डॉ. रामपालः शुक्लः	६-१०
३.	आयुर्दायनिरुपणम्	डॉ. हरिप्रसादः पाण्डेयः	११-१६
४.	अनुबन्धानाम् एकान्तत्वम्	प्रो. विनोदकुमारः झा	१७-२१
५.	किरातपद्यानामभिनवदृष्ट्या पर्यालोचनम्	डॉ. योगेशः त्रिवेदी	२२-२६
६.	संस्कृतसाहित्ये प्रभासतीर्थम्	डॉ. कपिलदेवः हरेकृष्णः शास्त्री	२७-३१
७.	सैषा संस्कृते भाषितभङ्गी	डॉ. दीपेशः कतिरा	३२-३८
८.	शुक्लयजुर्वेदे वनस्पतिः	डॉ. शत्रुघ्नपाणिग्राही	३९-४४
९.	मनुस्मृतौ वर्णिताया: वर्णाश्रमव्यवस्थाया: वर्तमानपरिप्रेक्ष्ये निरूपणम्	डॉ. भावप्रकाशः गांधी	४५-५५
१०.	धर्मशास्त्रीयन्यायव्यवस्था	डॉ. मीरा दूबे	५६-५८
११.	विदुरनीतिविषयकमध्ययनम्	डॉ. चतेनः पंड्या	५९-६५
१२.	व्याकरणमते शाब्दबोधकारणविमर्शः	श्रीविकासः शास्त्री	६६-६९
१३.	पुराणेषु भागवतस्य वैशिष्ट्यम्	नन्दकिशोरः मिश्रः	७०-७५
१४.	वाल्मीकिरामायणे धर्मविचारः	डॉ. राजदेवमिश्रः	७६-७९
१५.	अग्निपुराणे नगरवास्तुविधानम्	डॉ. हेमु महेश राठोड	८०-८९
१६.	पाणिनीव्याकरणे शिवतत्त्वविचारः	रविशंकरः राजगोरः	९०-९२
१७.	शब्दानुशासनस्य प्रयोजनानि	कु. मित्तल त्रिवेदी	९३-९८
१८.	सम्भाषणसन्देश-मासिकपत्रिकायां प्रकाशितानां सम्पादकीयलेखानां समीक्षा (1994-2012)	वन्दना लेले	९९-१०७

Scanned with CamScanner

अनुबन्धानाम् एकान्तत्वम्

प्रो. विनोदकुमारः झा

रक्षणार्थकात् 'गुप्'धातोः ''**गुप्तिज्किद्भ्यः सन्**''[1] सूत्रेण सन्-प्रत्यये कृते 'जुगुप्सते' इति रूपं सम्पन्नतां याति। 'जुगुप्सते' इत्यत्र सन्-प्रत्ययस्य 'स' अवलोक्यते तथा च ''**गुप्तिज्किद्भयः सन्**'' सूत्रे 'सन्'। अस्यां स्थितौ यदि सन्-प्रत्यये बोधकता स्वीक्रियते तर्हि नकारे बोधकावयवत्वं तिष्ठति अथ च सकारे बोधकतास्वीकारे नकारे बोधकाऽनवयवत्वं तिष्ठति। अत्र किं वस्तुतत्त्वं वर्त्तते, सन्-प्रत्ययस्य अनुबन्धो नकारोऽवयवो विद्यते न वा इति प्रश्ने सति उच्यते - **अनेकान्ता अनुबन्धा इति**[2] अर्थात् अनुबन्धा अनेकान्ता=अनवयवा भवन्ति।

अनुबन्धत्वं नाम इत्संज्ञकत्वम् एकान्तत्वं नाम अवयवत्वम् अनेकान्तत्वञ्च अनवयवत्वम् । अनुबन्धा एकान्ता भवन्ति अनेकान्ता वा इत्यत्र अनुबन्धा एकान्ता भवन्ति इति पक्षः सिद्धान्तरूपेण स्वीक्रियते। अनुबन्धानाम् अनेकान्तत्वपक्षस्वीकारे कारणं प्रस्तूयते- यो हि अवयवो भवति स कदाचित् तत्र=विधेय-स्थले उपलभ्यते, परम् अयमनुबन्धः तदर्थभूते विधेये=स्वविधेये न कदापि उपलभ्यते, तस्माद् अनुबन्धानाम् अनेकान्तं स्वीकरणीयम्। 'तदर्थभूते विधेये' इत्यत्र तच्छब्देन बोधकानां सनादि-प्रत्ययानां तथा च तदर्थभूतविधेय-शब्देन 'जुगुप्सते' इत्यादिषु लक्ष्यस्थसकारादीनां ग्रहणं क्रियते।[3]

अनुबन्धानाम् अनवयवत्वस्वीकारे 'शित्', 'कित्' इत्यादिषु स्थलेषु शकारोऽवयव इद् यस्येति शित्, ककारोऽवयव इद् यस्येति कित् एवम्प्रकारेण बहुव्रीहिसमासस्य सुसङ्गतिः समीपेऽवयवत्वरोपेण भवति अर्थात् शप्-विकरणस्य शकारः क्रु-प्रत्ययस्य ककारो यस्य इत्संज्ञा भूयमाना विद्यते सः समीपे उच्चारितोऽनुबन्धो विद्यते तथा च तत्र अवयवत्वमारोप्यते।यथा-**'स्वसमीपोच्चारितेऽनुबन्धे स्वनिरूपितमवयवत्वमारोप्यते'**। अनेन नियमेन शप्-विकरणे समीपोच्चारिते शकारानुबन्धे शप्निरूपितम् अवयवत्वम्, क्रु-प्रत्यये समीपोच्चारिते ककारे क्रुनिरूपितम् अवयवत्वम् आरोप्यते । **'स्वसमीपोच्चारितेऽनुबन्धे स्वनिरूपितमवयवत्वमारोप्यते'** अनेन नियमेन ''**वुञ्छ्ण्कठ....**'' - (4/2/80) इत्यादौ छण्-प्रत्ययस्य णकारे क-प्रत्ययनिरूपितावयवत्वारोपे समुत्पन्नायाः समस्याया निवारणं- **णित्त्वप्रयुक्तं कार्यं**

Scanned with CamScanner

पूर्वस्येव न तु परस्येति "**व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि सन्देहादलक्षणम्**" परिभाषया विधेयम्। न च अनुबन्धानाम् अनवयवत्वस्वीकारे "**हलन्त्यम्**"- (1/3/3) इत्यत्र अन्त्यशब्दस्य अन्त्यावयवबोधकत्वात्, तेन सूत्रेण उपदेशावस्थायाम् अन्त्यावयवस्य हल इत्संज्ञा कथं स्यादिति वाच्यम्, तत्र अन्त्यशब्दस्य परसमीपबोधकत्वेन स्वीकारात्।[4]

अनुबन्धानाम् अनेकान्तत्वादेव 'अभ्र आँ अटितः' इत्यादौ 'आँ' इत्यस्य इत्संज्ञायां प्राप्तायां तस्य 'आँ' इत्यस्य उद्देशत्वाद् अर्थात् उपदेशाभावात् तस्य "**उपदेशेऽजनुनासिक इत्**"[5] सूत्रेण इत्संज्ञा न भवति तथा च प्रकृतसूत्रे उपदेशग्रहणं चरितार्थं भवति। अन्यथा सूत्रे उपदेशग्रहणाऽभावे 'अभ् आँ अटितः' अत्र "**आङोऽनुनासिकश्छन्दसि**"[6] सूत्रेण 'आङ्' इत्यत्र अनुनासिकानन्तरम् 'आँ' इत्यस्य इत्संज्ञायां सत्यां अनुबन्धानाम् अनेकान्तपक्षे स्वसमीपोच्चारितेऽनुबन्धे स्वनिरूपितमवयवत्वस्य आरोपेन 'आँ' इत्यनुबन्धे 'अट्'-धातुनिरूपितमवयवत्वस्य आरोपद्वारा 'आँ' इति अवयव इद् यस्येति आदित् इति व्युत्पत्त्या 'अट्' धातोरादित्वात् "**आदितश्च**"[7] सूत्रेण इडागमनिषेधरूपोऽनिष्टापत्तिर्प्राप्नोति।

विशेषः- अत्र अनेकान्तपक्षे अनुबन्धानाम् अनेकान्तत्वसिद्धये परार्थानुमानस्य आश्रयणं क्रियते। अनुमानेऽस्मिन् पञ्चावयववाक्यानां प्रयोगो भवति। अत्र स्थले '**अनुबन्धा अनेकान्ताः**' इति प्रतिज्ञावाक्यं तथा '**यो ह्यवयवः स कदाचित् तत्रोपलभ्यत एव**' इति उदाहरणवाक्यं विद्यते। अनेन व्यतिरेकव्याप्तेरपि प्रदर्शनं कृतमस्ति। अन्वयव्याप्तौ साधनं व्याप्यं साध्यश्च व्यापको भवति, यथा-यत्र यत्र धुमस्तत्र तत्र वह्निः। व्यतिरेकव्याप्तौ साध्याभावो व्याप्यो तथा च साधनाभावो व्यापको भवति, यथा- **यत्र यत्र वह्न्यभावस्तत्र तत्र धूमाभावः** अर्थात् यत्र यत्र वह्नयभावो वर्त्तते तत्र तत्र धूमाभावोऽपि विद्यते। प्रकृतस्थले अनवयवत्वाभावः अर्थात् अवयवत्वं व्याप्यं भविष्यति अथ च 'तदर्थभूतविधेये कदाप्यदर्शनात्' अस्यभावः अर्थात् तदर्थभूतविधेये कदाप्यदर्शनाभावो व्यापको भविष्यति। प्रकृतौ व्यतिरेकव्याप्तेः प्रयोग एवम्प्रकारेण भवति- **यत्र यत्र अवयवत्वं तत्र तत्र विधेये दर्शनत्वम्**[8]

अनुबन्धानाम् अनवयवत्वस्वीकारे कानिचन गौरवाणि अपि सन्ति। यथा-

1 शित्, कित् णित् इत्यादिषु शब्देषु समासोपपत्तये '**स्वसमीपोच्चारितेऽनुबन्धे स्वनिरूपितमवयवत्वमारोप्यते**' इति आरोपकवाक्यं स्वीकरणीयं भवति।

2 सनादि-प्रत्यये नकारादयोऽवयवाः न भवन्ति, तस्मात् तद्धटितेभ्यः सनादिशब्देभ्यो विभक्त्युत्पत्तये सौत्रत्वाद् विभक्त्युत्पत्तिः परिकल्पनीया भवति।

Scanned with CamScanner

3 आदिशब्दस्य पूर्वसमीपे तथा "**हलन्त्यम्**" इत्यादिषु अन्त्यशब्दस्य परसमीपे लक्षणा स्वीकरणीया भवति।

4 "**आनङ् ऋतो द्वन्द्वे**" सूत्रेण 'आनङ्' इति विधीयमाने सति विधेयस्य 'आन्' इत्यस्य नकारः लक्ष्येषु मातापितरौ इत्यादिषु कदापि न दृश्यते, तत्र तु केवलम् आकारो दृश्यते। एवम्प्रकारेण 'आन्' इत्यादिषु विधेयेषु 'कदाप्यदर्शनात्' इति हेतुरर्थात् साधनन्तु गच्छति, किन्तु 'बोधकानवयवाः' इति साध्यं तत्र न गच्छति, अतः साध्याऽभावाधिकरणे हेतोः सत्त्वाद् अस्ति अत्र अनेकान्तपक्षे व्यभिचारदोषः।[9]

अनुबन्धानाम् एकान्तत्वपक्षस्वीकारे कारणं विद्यते सनादिप्रत्ययविधायकेषु "**गुप्तिज्किद्भ्यः सन्**" प्रभृतिशास्त्रेषु बोधकैः सनादिप्रत्ययैः सह अनुबन्धानाम् उपस्थितत्वम् अन्यत्र लक्ष्येषु 'जुगुप्सते' इत्यादिषु अनुपलब्धत्वञ्च। अत्र अनुमानवाक्यं वर्त्तते-अनुबन्धा बोधकावयवा बोधके उपलम्भाद्, अन्यत्र अनुपलम्भाच्च। अनवयवो हि काकादिरेकसम्बन्धविशेषेण तात्कालिकेन संयोगसम्बन्धेन गृहवृक्षादिषु सर्वत्र उपलभ्यते, किन्तु एते नकाराद्यनुबन्धाः केवलं बोधकैः सनादिप्रत्ययैः सह समवायसम्बन्धेन तु तिष्ठन्ति न तु अन्यत्र। अनुबन्धानाम् अवयवत्वस्वीकारेण 'शित्', 'कित्' एवम्प्रकारेण बहुव्रीहिसमासः सुसङ्गतो भवति। अन्त्यादिशब्दानां परसमीपाद्यर्थे लक्षणापि न करणीया भवति। किञ्च अनुबन्धानाम् अवयवत्वस्वीकारे ण-श-क-प्रत्ययादौ इत्संज्ञारूपा इष्टापत्तिरपि वर्त्तते, तत्र प्रत्ययादित्वात् सहैव दघ्नच्-प्रत्यये चकारस्य वैयर्थ्यापत्तिरपि न भवति। तस्माद् अनुबन्धानाम् एकान्तपक्षरेव स्वीकारणीयः।[10]

"**उपदेशेऽजनुनासिक इत्**" सूत्रात् "**हलन्त्यम्**" सूत्रे **उपदेशेति** पदम् अनुवृत्य उपदेशावस्थायां विद्यमानस्य हल इत्संज्ञा "**हलन्त्यम्**" सूत्रेण क्रियते, तेन "अइउण्" इत्यादिषु माहेश्वरसूत्रेषु णादीनाम् इत्संज्ञा 'हल्' प्रत्याहारसिद्धेः प्राक् न सम्भवति, किन्तु अन्यत्र "**भवतष्ठक्छसौ**"[11] इत्यादिसूत्रैः विहितेषु ठक्-छसादिषु प्रत्ययेषु अन्तरङ्गत्वात् प्राय उच्चारणेन अभिव्यक्ते उपदेशपदार्थे अन्त्यस्य हल इत्संज्ञा अभिव्यक्तानन्तरमेव भवति, तस्माल्लक्ष्ये अनुबन्धविनिर्मुक्तपदार्थस्य उपस्थितिर्भवति। अत्र कारणं वर्त्तते- **उपदेशोत्तरकाला इत्संज्ञेति** "**नाज्झलौ**"[12] सूत्रस्थं भाष्यम्। अत्र शंका समुदेति यद् एकान्तत्वपक्षे उपदेशोत्तरकाले इत्संज्ञायां सत्यां इत्संज्ञकस्य लोपो जायते। अस्यां दशायां "**डः सि धुट्**"[13] प्रभृतिसूत्रेषु अनुबन्धटकारसहितात्

Scanned with CamScanner

धुटर्विभक्त्युत्पत्तिः कथं भवति? सानुबन्धकात् धुट्-शब्दात् विभक्त्युत्पत्तिस्तु एतदर्थं भवति यतोहि तेनैव सानुबन्धकेन धुट्शब्देन अनुबन्धविनिर्मुक्तपदार्थस्य धकारस्य (ध्) उपस्थितिर्भवति, तेन सानुबन्धको धुट्-शब्दोऽर्थवान् अस्ति प्रातिपदिकसंज्ञा च तस्य जायते। सूत्रे उच्चारणसामर्थ्याद् अनुबन्धानां लोपो न जायते। अन्यथा सूत्र एव लोपे सति धुट्-स्वरूपस्य ज्ञानमेव न भवति। स्पष्टञ्च इदं "**तित्स्वरितम्**"[14] इति सूत्रस्य कैयटे।

अनुबन्धानाम् एकान्तत्वेन टकारोऽवयव इद् यस्येति टिद् इति व्युत्पत्त्या आडागमस्य टित्त्वात् "**आटश्च**"[15] इत्यादेरसङ्गतिर्न भवति, टकारो यस्य अवयवो विद्यते एतादृशात् आट् अर्थात् 'आ' इत्यस्माद् अचि परे पूर्वपरयोः स्थाने वृद्धिरेकादेशो भवति इत्यर्थस्वीकारात्। कारणम् अनेन अर्थेन समेषां प्रयोगाणां सिद्धिर्जायते। अन्यथा यत्र सूत्रे 'आट्' अस्ति तत्र न अच् परे भवति, नेष्यते च तत्र वृद्धिः। यत्र प्रयोगे इष्यते वृद्धिस्तत्र न 'आट्'। एवम्प्रकारेण "**आटश्च**" इति सूत्रस्य असङ्गतिः स्पष्टैव।

उपदेशोत्तरकाला इत्संज्ञा इत्यनुरोधेन येषाम् अनुबन्धानाम् उपदेशः सूत्रेषु विद्यते तेषाम् इत्संज्ञा सूत्रेषु एव भवति। अस्य परिणामोऽयं भवति यद् विभक्तिसंज्ञा या सूत्रे उक्त वर्त्तते, या संज्ञा सुप्-तिङोर्भवति सा संज्ञा अपि "**स्वौजसमौट्...**"[16] सूत्रान्तर्गतानां प्रत्ययानां "**तिप्तस्झि....**"[17] सूत्रान्तर्गतानाञ्च प्रत्ययानां सूत्रयोरेव एव भवति। अतः "**नः विभक्तौ तुस्माः**"[18] इति निषेधसूत्रस्य प्रवृत्तिरपि तत्रैव अर्थात् इत्संज्ञाया विषयः यस्मिन् सूत्रे उपात्तो वर्त्तते तस्मिन्नेव सूत्रे भवति। तात्पर्यमिदं विद्यते इत्संज्ञा, विभक्तिसंज्ञा, निषेधश्चेति सर्वं कार्यं सूत्रे एव भवति।

अनुबन्धविनिर्मुक्तप्रदार्थस्य उपस्थितत्वादेव "**इदम् इश्**"[19] इति सूत्रेण 'इह' प्रयोगे 'इश्' आदेशे प्रवृत्ते शित्त्वाद् अनुबन्धविनिर्मुक्तप्रदार्थस्य इकारस्य सवदिशो भवति तथा च प्राप्तस्य सर्वणग्रहणस्य "**अणुदित्सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः**"[20] सूत्रेण इकारस्य अण्त्वाद् निषेधश्च भवति। यत्तु "**अनेकाल्शितसर्वस्य**"[21] सूत्रे शिद्ग्रहणाभावेऽपि इशः शित्करणादेव अर्थात् अनेकाल्त्वादेव सवदिशत्वम् उक्तम्, यथा- 'इशि शिद्ग्रहणाभावेऽपि शित्करणादेव सवदिशत्वम्' इति तस्य तु तात्पर्यम् इदं विद्यते यत् तस्मिन्=इशादेशे इत्संज्ञकशकारणाद् भूतपूर्वम् अनेकाल्त्वमादाय सवदिशत्वमस्ति, न तु अनुबन्धस्य ग्रहणे।

अनुबन्धानाम् एकान्तपक्षे यानि कार्याणि सम्पन्नानि भवन्ति तानि सर्वाणि अनुबन्धानाम् अनेकान्तपक्षेऽपि सम्भवन्ति, किन्तु सः पक्षो न स्वीक्रियते, अनेकान्तपक्षस्य उपर्युक्तप्रकारेण गौरवग्रस्तत्वात्।

Scanned with CamScanner

सन्दर्भाः-

1 पाणिनि-अष्टाध्यायी-सूत्रपाठः-3/1/5
2 परिभाषेन्दुशेखरे परिभाषा-संख्या-5
3 आचार्य-विश्वनाथशास्त्रिणः हिन्दीटीकोपेते परिभाषेन्दुशेखरे, पृष्ठसंख्या-20
4 आचार्य-विश्वनाथशास्त्रिणः हिन्दीटीकोपेते परिभाषेन्दुशेखरे, अनेकान्ता अनुबन्धा इति परिभाषोपरि।
5 पाणिनि-अष्टाध्यायी-सूत्रपाठः- 1/3/2
6 पाणिनि-अष्टाध्यायी-सूत्रपाठः- 6/1/126
7 पाणिनि-अष्टाध्यायी-सूत्रपाठः- 7/2/16
8 आचार्य-विश्वनाथशास्त्रिणः हिन्दीटीकोपेते परिभाषेन्दुशेखरे, पृष्ठसंख्या-22
9 आचार्य-विश्वनाथशास्त्रिणः हिन्दीटीकोपेते परिभाषेन्दुशेखरे, पृष्ठसंख्या-24
10 आचार्य-विश्वनाथशास्त्रिणः हिन्दीटीकोपेते परिभाषेन्दुशेखरे, पृष्ठसंख्या-25
11 पाणिनि-अष्टाध्यायी-सूत्रपाठः-4/2/115
12 पाणिनि-अष्टाध्यायी-सूत्रपाठः-1/1/10
13 पाणिनि-अष्टाध्यायी-सूत्रपाठः-8/3/29
14 पाणिनि-अष्टाध्यायी-सूत्रपाठः-6/1/185
15 पाणिनि-अष्टाध्यायी-सूत्रपाठः-6/1/90
16 पाणिनि-अष्टाध्यायी-सूत्रपाठः-4/1/2
17 पाणिनि-अष्टाध्यायी-सूत्रपाठः-3/4/78
18 पाणिनि-अष्टाध्यायी-सूत्रपाठः-3/1/4
19 पाणिनि-अष्टाध्यायी-सूत्रपाठः-5/3/3
20 पाणिनि-अष्टाध्यायी-सूत्रपाठः-1/1/69
21 पाणिनि-अष्टाध्यायी-सूत्रपाठः-5/3/3

प्रो. विनोदकुमारः झा
व्याकरणसङ्कायाध्यक्षोऽनुसातकभवनाध्यक्षश्च
श्री सोमनाथ संस्कृत युनिवर्सिटी,
वेरावलम्, गुजरातराज्यम्, 362266

Scanned with CamScanner

Reg. E /1260 / 2-7-2010 ISSN : 2278 - 4594

The Referred International Journal

Recent Thought

Vaicharik Pravaho

Year - 4 ISSUE - 2 OCT - 2015

શિક્ષણ : રંગ-તરંગ

SPECIAL ISSUE

One-Day National Seminar

on

"Prospects and Challenges of Contemporary Education"

organized by

Shree Somnath Education Society's

Smt. C. P. Choksi Arts & Shree P. L. Choksi Commerce College, Veraval

on date : 15-03-2015

સંપાદક : ડૉ. રશ્મિ મહેતા

સહસંપાદક : : ડૉ. એ. એમ. ચોચા

Scanned with CamScanner

Sr. No.	Title	Page No.
(89)	*'शिक्षण की तात्त्विक आधार शिलाएँ'*, प्रा. महेता शैलेश एन., डी. वी. आर. गोढाणीया बी. एड. कॉलेज, पोरबन्दर	187
(90)	आधुनिक शिक्षा और चुनौती : त्रिवेदी मयंक एन.	189
(91)	'वैश्विक आफत के सामने शिक्षण की भूमिका' : वाला अनिलभाई सोमजीभाई, श्री सोमनाथ संस्कृत युनिवर्सिटी वेरावल	191
(92)	"शिक्षक और संस्कृति" : जोशी विधि प्रविणभाई, जी.के.एण्ड सी.के.बोसमीया आर्ट्स एण्ड कोमर्स कॉलेज-जेतपुर	193
(93)	आचार्य पाणिनि एवं उनकी शिक्षा : प्रो. विनोकुमार झा, श्री सोमनाथ संस्कृत युनिवर्सिटी, वेरावल, गीर-सोमनाथ (गजरात)	194
(94)	नई शिक्षा नीति : विसावडीया हर्षा जीवनभाई	196
(95)	मूल्य आधारित शिक्षण : झणकाट रिद्धिबहन भूपतसिंह	198
(96)	વર્તમાન સમયની માંગ:પર્યાવરણનું શિક્ષણ : ડો.ઊર્મિલાબેન પટેલ ડો.મયુર એસ જાની શ્રી દોશી આર્ટસ એન્ડ કોમર્સ કોલેજ,વાંકાનેર	201
(97)	ઉચ્ચ શિક્ષણમાં વિકાસમાં વૈદિક સાહિત્યનું યોગદાન : ડૉ.હરેન્દ્રકુમાર વી. ચૌધરી, શ્રીમતિ બી.વી.ધાણક આર્ટ્સ એન્ડ કોમર્સ કોલેજ, બગસરા.	204
(98)	મુલ્યો આધારિત શિક્ષણ : પ્રો. સોનીરાવ.એમ.ગાઈન, શ્રી પુ.કે.વાછાણી મહિલા કોલેજ, કેશોદ.	206

Scanned with CamScanner

आचार्य पाणिनि एवं उनकी शिक्षा

प्रो. विनोदकुमार झा
श्री सोमनाथ संस्कृत युनिवर्सिटी, वेरावल, गीर-सोमनाथ (गजरात)

महर्षि पाणिनि शिक्षा के परम प्रेमी एवं यावज्जीवन शिक्षापरायण ही रहे । उनकी पाणिनीय शिक्षा तो प्रसिद्ध ही है, जो स्वर तथा उच्चारण के लिये पूर्ण मार्गदर्शिका है । उन्होंने लौकिक-वैदिक सभी प्रकार के शिक्षाओं पर विचार किया है । अतः यहाँ उनपर एक स्वतन्त्र प्रबन्ध प्रस्तुत है ।

पाणिनि के अनुसार 'शिक्षा' शब्द की अनेक व्युत्पत्तियाँ है । उन्होंने मानो शिक्षा को ही परब्रह्म मान रखा था । उनके धातुपाठ में भी 'शिक्ष' धातुएँ दी गयी हैं ।

पाणिनि के समय में शिक्षाकाल ब्रह्मचर्य कहलाता था - 'तदस्य ब्रह्मचर्यम्' (पा. ५।१।९४) इसमें शास्त्रीय ब्रह्मचर्य के नियमों को पूर्णतया पालन करना पड़ता था । आचार्य - उपाध्यायादि से विद्यार्थी-शिक्षार्थी का सम्बन्ध विद्यासम्बन्ध कहलाता था । **विद्यासम्बन्धेभ्यस्तावद् उपाध्यायादागतम् औपाध्यायकम् आचार्यादागतम् आचार्यकम्, शिष्यादागतं शैष्यकम् (४।३।७७ काशिका)'** । इस प्रकार इस सम्बन्ध से प्राप्त पदार्थ-ज्ञान शिक्षादि में 'वुञ्' (अक्) प्रत्यय का प्रयोग होता था । शिष्य का गुरुपसदन - गुरु के पास शिक्षार्थ जाना 'आचार्यकरण' कहलाता था और उपनयन भी (पाणि. १।३।३६) । शिष्यों के मानव और अन्तेवासि दो भेद थे । उन्हें दण्ड रखना पडता था - 'दण्डप्रधाना मानवाः ।' पतञ्जलि के अनुसार वेद में अपवृत् छात्र मानव कहलाता था ।

शिक्षार्थी अपनी विशेषता के अनुसार शिष्य, छात्र, विद्यार्थी तथा अन्तेवासी के नाम से व्यक्त होता था । शासन करने योग्य को 'शिष्य' कहते थे । अनुशासन-विषता इस का विशेष धर्म होता था । अध्ययनकाल में पूर्ण अनुशासित होकर वह सामाजिक जीवन में सफल होता था ।

गुरु के पास गुरुगृह में वास करने से अन्तेवासी कहलाना युं ही था (४।३।१३०) । 'चरणे ब्रह्मचारिणि' के अनुसार ये ग्रन्थरुप से ब्रह्मचारी ही कहे जाते थे । गुरु की छत्रवत् रक्षा करने से ये छात्र भी कहलाते थे (४।४।६२) **'छत्रादिभ्यो नः' 'छादनादावरणाच्छत्रम् । गुरुकार्येणावहितः शिष्यावरणप्रवृत्तश्छत्रशीलः शिष्यश्छात्रः ।'** (काशिका) । छात्रों को अजिन (मृगचर्म) एवं कमण्डलु सदा साथ रखना पडता था (द्र. सूत्र ४।१।७१ तथा ६।२।१६४)' विद्यार्थी उसे कहते थे जो गुरु को विद्या का धनी समझकर उन से विनम्रतापूर्वक विद्या की याचना करता था । विद्या का लाभ ही उसका मुख्य प्रयोजन होता था । विद्या के प्रति उत्कट अनुराग और गुरु के प्रति शुश्रुषाभाव विद्यार्थी शब्द के अर्थ से सूचित होता है ।

Scanned with CamScanner

आचार्य धर्मार्थ शिक्षा देते थे । आचार्य शिष्यो में आचार अर्थात् चरित्र का निर्माण करते थे, शास्त्र के रहस्यों को खोलते थे और शिष्यों की बुद्धि को विकसित करते थे । शिष्यों का उपनयन-संस्कार कर उन्हें कल्प और रहस्य के साथ वेदादि की शिक्षा देते थे । आचार्य की यही कामना रहती थी कि उनका शिष्य विद्वान् बनकर मनस्वी और यशस्वी हो तथा शिष्य-परम्परा को सुदृढ़करे ।

योग्य शिक्षक उन दिनों अनूचान (३।४।६८) और प्रवचनीय कहलाते थे (३।२।१०६) । वे दोनों प्रायः सदा उपस्थानीय (३।४।६८) एक साथ ही रहते थे । राजपुत्र, ऋषिजपुत्र, आचार्यपुत्र साथ-साथ शिक्षा प्राप्त करते थे (६।२।१३३) गुरुओं के आचार्य, उपाध्याय, प्रवक्ता, श्रोत्रिय, अध्यापक आदि भेद भी थे । अथर्ववेद का ११।५ वाँ पूरा सूत्र आचार्य और ब्रह्मचारी के सम्बन्ध की महत्ता का ही प्रतिपादक है । अष्टाध्यायी में अयोग्य, उच्छृच्ल, अनवहित शिष्यों के लिये तीर्थकाल, जाल्म आदि शब्द प्रयक्त् हुए हैं (२।१।२६,४१ आदि) । भागवत में भी ऐसी बातें आयी हैं ।

आचार्य की शास्त्रों में अनेक व्युत्पत्तियाँ हैं । पाणिनि की परम्परावालोंने आचार्य शब्द की -

आचिनोति च शास्त्रार्थानाचारे स्थापयत्यपि ।
स्वायमाचरेत यस्मात् तस्मादचार्य ईष्यते ।।

- यह व्युत्पत्ति प्रदिष्ट हैं ।

आचार - चरित्रप्रधान होने के कारण, सदाचार के मुख्य शिक्षण के कारण उसे श्रद्धापूर्वक आचार्य कहते थे । एकदेश के - विद्या के एक प्रविभाग के अध्यापन करानेवाले को उपाध्याय भी कहते थे । उसे ही अध्यापक, प्रवक्ता आदि भी कहा गया है ।

श्रोत्रिय संस्कार, विद्या, अनुष्ठानादि के अनुभवादि से संयुक्त होते थे । पाणिनिने, शिक्षाशास्त्र तथा सभी शिक्षाओं का भी विस्तार से विचार किया है । उन्हें ज्योतिष भी पूरा ज्ञात था - **'कालारूप्' 'नक्षत्रेण युंः कालः ।'** साथ ही उसका अनेक ग्रन्थो में भी उल्लेख किया है, अनेक श्रेष्ठ विद्वानों की भी चर्चा की है । उसकी पूरी जानकारी के लिये समग्र ग्रन्थ का अवलोकन आवश्यक है । इसमें काशिका, जिनेन्द्रबुद्धि, हरदत्त, पतञ्जलि, कैय्यट तथा वर्धमान आदि की व्याख्याएँ भी परम सहायक है ।

Scanned with CamScanner

ISSN 2277-713X

वयम्

रचना-परम्परा-गवेषणाधारिता

जगद्गुरुरामानन्दाचार्यराजस्थानसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य त्रैभाषिकी षाण्मासिकी शोधपत्रिका

संयुक्ताङ्कः 16-19

जगद्गुरुरामानन्दाचार्यराजस्थानसंस्कृतविश्वविद्यालयः
मदाऊ, भांकरोटा, जयपुरम्-302026 (राज.)

Scanned with CamScanner

13. वाक्यपदीय के सन्दर्भ में लिङ्गपदार्थ विमर्श 92
–डॉ. भगवतशरण शुक्ल

14. जीवन्मुक्त किसे कहते हैं? –डॉ. संदीप जोशी 114

15. शक्तितत्त्व का स्वरूप –डॉ. रामेश्वर नाथ द्विवेदी 119

16. श्रीरामानन्दाचार्य जीवनवृत्तख्यापकं ग्रन्थद्वयम् 125
–देवर्षि कलानाथ शास्त्री

17. वास्तुशास्त्रीय वाङ्मय में मण्डप विवेचना 127
–डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा

18. संस्कृत वाङ्मय में प्रयुक्त लौकिक न्याय एवं सूक्तियाँ 134
–डॉ. पंकज कुमार व्यास

19. कम्प्यूटर में "वायरस" – एक विवेचना 149
–ले. डॉ. कुलदीप तिवाड़ी

20. समकालीन संस्कृत साहित्य में मूल्य–दृष्टि 152
–डॉ. स्नेहलता शर्मा

21. कौटिल्य का अर्थशास्त्र : नगर–व्यवस्था और लोक–प्रशासन 163
–डॉ. विवेक

22. वैदिक युगीन शिक्षा प्रणाली 170
–डॉ. (श्रीमती) दीपिका विजयवर्गीय

23. मन्त्र रहस्य और सिद्धि –आचार्य डॉ. महेन्द्र कुमार मिश्र 173

24. स्त्री शिक्षा से राष्ट्र का सन्तुलित विकास 178
–डॉ. (श्रीमती) रेखा शर्मा

25. Indian Democracy and Its Base 181
–Dr. Vinod Kumar Jha

26. लेखानुग्राहकाणां सूची 187

• • •

Scanned with CamScanner

Indian Democracy and Its Base

– Dr. Vinod Kumar Jha

Introduction

According to human developmentalists, the specific development of the culture of some special community takes place only after the development. The responsible system of ruler is also being felt, for connecting different types of people of the groups with each other and solving their problems, when the culture organizes its own forms. In the past people were ruled by the kings. Now, in the very modern age, democratic system is prevalent all over the world but at present also we can see the relics of that time. It is fortunate that India has the largest democratic system. Today it is also proved that this system is supreme, best and acceptable by the maximum people. There is no doubt that our democracy too has faults. It has some sorts of problems that sometimes it looses its credibility. We have at times no faith in it. All of us feel it when democracy doesn't work according to us. Actually, these faults are not related to the democracy, but these are related to system and those persons who are related to it.

Democracy has its base in election. In the democracy, people elect their representatives by the election and dedicate the entity to them. It's the importance of election that in the democracy, election is known by the name of "festivity". Unfortunately, there are now some faults in our election system, that's why sometimes it seems that the existence of our democracy is entangled in danger. Actually, without improvement in the election system, it is not possible to protect democracy from danger because there is no meaning and no use of the democracy without impartial election. Before we discuss the election system and its essential improvement, we should know and understand- what democracy is? The things, which belong to India, are called Indian. The 'democracy' word is made of two Yunani words: Demo- people and Kratia- rule/power. There is loktantra word for democracy in Hindi and Sanskrit. Both words have same meaning, "The rule of the people". In the words of Abraham Lincoln democracy is, "Government of the people, by the people and for the people". Bryce defines this, "The word 'democracy' has been used to denote the form of Government in which the ruling power of state is largely vested not in any particular class or classes, but in the members of the community as a whole".

In the beginning, the word- 'democracy' was used for "The rule of the persons". At that time, the existence of power was not for one but it was

Scanned with CamScanner

divided among many persons. According to Arastu 'democracy' word was used for 'crowd-tantra' not for loktantra but now, it is the synonym of Loktantra. As we know that the democracy is the system of the rule like others, but now it is admitted more than that. People expect some more from it. Actually now-a- days it is a system of life, a social system, a cultural symbol, a nature of political system and a kind of state. Unfortunately, we can't see this multifaceted ideal form of democracy anywhere. It has lot of faults. There are many kinds of faults in the democratic system, but the main fault of them is in election system. As we know, the democracy is based on election system; therefore, first of all, improvement is necessary for election system.

The simple meaning of the election is "People using their opinion choose their representatives by voting in the election and dedicate the entity to them". At present, all the democratic governments are elected by the people. The meaning of the "right to vote" is people elect their representatives by voting and they make rules for the people. These are possible by the elections. Thus the "right to vote" is the main base of the democratic system. According to Harnsha "politically democracy is the system to appoint, remove and control on the only government." In reality, the "right to vote" is a personal expression of the mastery.

Let us now discuss the importance of "the right to vote or election". The right to vote is the practical form of expression and applying principle of democratic principle, which is called "the popular mastery". The thing, which impress all, that also should be decided by all and the right to vote serves this purpose. Elections play important role to take political decision, to establish democratic government system and to fix the part of the people. It indirectly also work to inculcate the vigilance in the people for the various social matters, problems related to the people, demands and interests. In addition to these, expression of desire and aspiration of the people is also directed by it for improving and changing.

In the manner, there are lots of elements responsible for success of democracy. We can not accept anyone element as base for the success of democracy, but in the democratic system importance of the elections is not hidden from anybody. It is necessary for any democratic system that the character of society should be high. If the people of the nation have moral character, perform duty honestly then certainly, atmosphere of the nation will be cordial to democratic system in which democracy will flourish. It is possible only through education. Indifference for the duties is the death of democracy. Increasing dishonesty hinders to take democratic decisions. Selfishness, greediness for the post and Indifference for the collective welfare are the strong elements to make futile the democracy.

Scanned with CamScanner

Faults and suggested solutions :

- The first main fault is the use of money in the election system. The money is now necessary to fight the election. We can not think to fight the election without money. In the political entity, the equality of the partnership of the every person is the main base of the democracy, but this main base of the democracy is destroying because of odd economic. Famous thinker, Lord Braise wrote in his book named "Modern Democracies", in the politics, "Increasing influence of money is the biggest danger". The democratic roots of India have also been shaken. The former president V. V. Giri of India had told in his speech addressing the nation in 1974, "In the election, 'the use of the riches' is the root of the corruption" and it corrupts our democratic lives. Before it, 'Banchu committee' had regretted in its report that now, election is so costly, that's why, it is unapproachable to general people.

In the Indian elections, black money is also abundantly used which comes from the abroad. In this situation, we can understand what sorts of the persons are coming in the politics, when black money has so much importance in the elections. Criminals and communal parties use the money in the elections received from abroad. That's why our mastery and integrity have been caught in dangers. There are two losses of costly elections. 1. The persons who have no money in plenty can't fight the election. 2. Who have lot of money; they fight and win the election. After that they want to earn money and do corruption and corrupt the politics.

- There is second next biggest fault of our election system, 'casteism'. Political parties also encourage it for the sake of their selfishness. The selection for candidates is based on it and casteism based feelings are provoked. Although the casteism is hovering as danger in every area of our lives, but in the politics, dominant casteism has ruined our democratic values. Indian politics had also casteism before freedom but after attaining freedom it rose up speedily. In decade of 1990 Mandal and Dalit politics made all the politics based on casteism. At present Indian politics are mostly moving around casteism. So, all the political parties have to pass with bent heads door to door of other castes to enter the gracious palace of existence. In Indian politics proper assessment of the role of the caste is a tedious task. According to some learned persons casteism is the cancer for the politics. Caste system works like speed breaker for national unity. It should be understood by our political leaders and voters.

Scanned with CamScanner

- The third fault of the election system is those persons who have strength in their arms. Now we discuss crime in the politics, but it will be better when we discuss politics in the crime. It is considered by the political parties that criminals are stronger than crimeless good political persons, to win the voters their side. Politics and crime both of them are areas to earn power. Even though the declared object of politics is public service and the purpose of crime is illegal supremacy. Although the character of both is against each other but even then both are united. Democracy is bleating between the partnership of crime and politics. There are many politicians whose character is drenched in the crime. First, politicians took the help of criminals to win the election and after winning the election encouraged and protected them. When criminals tested the entity by helping, then they themselves tried for it and now existence is in their hands. Crime was seen at first in some states but it is seen in most of states now.
- Community is the fourth fault for the election system. It is also not behind to contaminate this system. Englishman under the policy of "divide and rule" spread communal disharmony in the people to establish their rule. The problem related to community has been given to Indian politics by the British rule. It should be made clear that community is different thing and religion is different thing. For example, Hindu is a religion and our dharma is Sanatan.
- Feeling for some special area is the fifth fault in the election system. This fault is also destroying our system. This is also spread by the political parties. This creates a very big problem.
- Recently, a new problem has emerged in the election system- increase in the number of candidates. Some times one area has 50 to 60 candidates. In this situation voters are confused. Election system has useless burden. Election process becomes intricate but this problem has reduced according to new rules of election commission.

There are some other faults also. Due to all these, our election system looks sick. We can divide the faults of election system between two parts. 1. Deficiency of system. 2. Deficiency of applying. These faults can be removed, if our parliament (Lower House, Upper House), central government, political parties want. Suggestions are given from time to time by the several committees, political parties, judiciary and election commission but it is necessary to apply those suggestions in practical life.

Scanned with CamScanner

- In the election, to prevent the use of unlimited and black money-In the elections to prevent the use of unlimited and black money 'Banchu committee' had suggested that candidates should be helped by the government like Germany and Japan but the problem is that the situation and mentality of Indian people are different from those countries. So, government grants are misused. New parties are established. The suggestion may be applied with some improvements like the parties which are registered and have growth should take grants etc. These parties would also be entitled to some materials like posters etc.
- In the election, to prevent the entry of criminals in politics –

1. The man who is declared as criminal in the general case by the court can't be considered candidate for next 6 months.
2. If the court declares anybody as criminal in the case like murder, rape, treason, dacoit etc, then that person will be disqualified to fight the election for whole life.
3. Candidate should be incapable for the fixed time if he gives wrong information about his properties and background of his crime.
4. If candidate gives wrong information and wins the election, in this situation, his membership should be cancelled immediately.
5. If candidate takes any type of help from criminal or maintains any relation with them, then candidate should be disqualified from election. These are some suggestions to prevent the admission of criminals in the election.

- **In the election, to prevent the admission of casteism and religion, some suggestions are –**

1. The parties, based on religion or caste, should be cancelled.
2. If any candidate during in the publicity of his party tries to incite the religious or casteism feelings, then candidate should be declared incapable for election.
3. If any main leader of the political party discuss the religion or caste related matter in the election, then the recognition of the party should be cancelled.
4. Religious persons like sadhu-santas, maulvies, priests etc. should not address any meeting of election.
5. In the elections, decree shouldn't be issued.

- **Impartial election should be held. Some suggestions are –**

1. In the decision of appointment of election commissioners, the judge

Scanned with CamScanner

of the Supreme Court, leaders of opposition parties also should take an active part besides the Prime Minister.

2. Legislature should not ban the decision of the judiciary.
3. The political pressure on any election officer should be declared as crime. Political pressure comes under the corrupt practice. If this is done by any candidate, he should be disqualified from election.
4. Voter list should be updated twice a year.
5. Voter list has many errors. So, voter list should be prepared carefully.

As we know that democracy is based on election and election is based on people. Therefore, people should be careful. They should discuss election matter with each other. They should know and do their own duties. They should think that we are for nation. Nation is our mother. We are her children. We should take care of our mother. For fulfillment of this wish knowledge is necessary. "Wisp is based on knowledge" goes the verse. We can get knowledge from education. We can get this type of knowledge from Sanskrit. There is a verse in rigveda- land is our mother and we are her children". If people are awake and aware, then everything is possible and every problem may be solved. Hence, people should always be watchful.

Scanned with CamScanner

'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति - ऋग्वेद'

Bimonthly

ISSN : 2395-1427

Gyan Pipasa

Peer reviewed Journal

The National Journal of Literary : Science & Humanity (Multi Disciplinary)

Vo.3 Issue : XVI July - Aug. 2017

Editor

Dhruvinkumar Chauhan

Scanned with CamScanner

03. पाणिनीयव्याकरणे शिवतत्वविचारः

संशोधक : रविशंकर कुंभाभाई राजगोर
श्री डाकोर संस्कृत पाठशाला ।
ता. ठासरा । जनपद - खेडा । गुजरात
३८२२२५ । ९५३७६९७६४६
प्रोफेसर - विनोदकुमार झा
श्री सोमनाथ संस्कृत युनिवर्सिटी, वेरावलम् ।

भाषते या सा भाषा। भाषैव भाषते जगदिदं। भाषया विना जगत:कल्पनैव न शक्या। भाषा नाम शब्दः। शब्दस्तु शिवः। अर्थात् जगदिदं शिवमयं वर्तते। तत्रेमां श्रुति प्रमाणयन्ति।

शब्दब्रह्मयदैकं यच्चैतन्यं सर्वभूतानम्।

यत्परिणामस्त्रिभुवनमखिलमिदं जयति सा वाणि॥

सैव वाणी व्याकरणरुपा। व्याकरणं वेदपुरुषस्य मुखं वर्तते। प्रधानं च षड्ङ्गेषु व्याकरणम्।

वेदः शिवः शिवो वेदः वेदाध्यायी सदाशिवः ।

अतः मुख्यत्वात् व्याकरणमपि शिवरुपमेवास्ति। तथाहि उक्तं हरिणा

ब्रह्मेदंशब्दनिर्माणं शब्दशक्ति निबन्धनम्।

विवृतं शब्दमात्राभ्यस्तावेव प्रविलीयते॥

अर्थात् स्थितिप्रवृतिनिवृतिविभागाः शब्देनैवाक्रियन्ते। तथा हि शब्दैव ब्रह्मः शिवः। शब्दसिद्धये प्रकृतिप्रत्ययैः प्रकल्पित स्वरुपं व्याकरणं तत्र च लौकिकवैदिकोभायोपदेशत्वात् पाणिनीयव्याकरणं सर्वानतिशेते।

शब्दब्रह्मरुपत्वात् शिवरुपत्वात् पाणिनीयव्याकरणमपि शिवमयम्। अस्यापि आदि वक्तारपि शिवैव वेदोऽपि प्रमाणयति-

ईशानः सर्वविद्यानम् ईश्वरः सर्वभूतानाम्-- ।

अनेके वैयाकरणाः अपि प्रमाणयन्ति।

Scanned with CamScanner

काशिकायां वामनजयादित्यौ-

नृतावसाने नटराजराजो ननाद ढक्का नवपञ्चवारं।

उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद् विमर्शे शिवसूत्रजालम्॥

नटराजराजः शिवः नृत्यसमये नवपञ्चवारं डमरुनादं कृत्वा पाणिनये –

१ अइउण् २ ऋलृक् ३ एओङ् ४ ऐऔच् ५ हयवरट् ६ लण् ७ ञमङणनम् ८ झभञ् ९ घढधष् १० जबगडदश् ११ खफछठथचटतव् १२ कपय् १३ शषसर् १४ हल्।

चतुर्दश सूत्राणि प्रयच्छत्।

अद्वैत एव तात्पर्यं प्रकाशितं श्री नन्दिकेश्वरेण भगवता-

अकारो ब्रह्मरुपः स्यान्निर्गुणः सर्ववस्तुषु।

चितकलामि समाश्रित्य जगद्रुप उणीश्वरः॥

अकारः सर्ववर्णाग्रयः प्रकाशः परमेश्वरः।

आद्यमन्त्येन संयोगादहमित्येव जायते॥ इति।

अइउण् इति सूत्रस्थाकारेण हलिति सूत्रस्थहकारसंयोगे अहमिति भवतीत्यर्थः।

सर्वं परात्मकंपूर्णं ज्प्तमात्रमिदं जगत्।

ज्प्तेर्बभूव पश्यन्ती मध्यमा वाक् तः स्मृता॥

अकाराज्प्तिमात्रं स्यादिकारश्चित्कलास्मृता।

अकारं सन्निधिकृत्य जगतां कारणत्वतः।

उकारो विष्णुरित्याहुर्व्यापकत्वान्महेश्वरः॥

एषु श्लोकेषु निर्गुणस्य ब्रह्मण एव सर्वकारणत्व हरिहरभेदश्च दर्शितः।

सर्वं परात्मकं पूर्वं ज्प्तिमात्रमिति सर्वस्य प्रपञ्चस्य सर्गात् पूर्वं ज्प्तिमात्रस्वरुपपाभिधस्फोटात्मकत्वाभिधानात् स्फोटस्याद्वितीयचैतन्यस्वरुपत्वमुक्तम्। स्फोटाद्वैतोपपादनायोगात् वैयाकरणशिरोमणि भतृहरिरपि तत्वमिदं प्रकाशयति वाक्यपदीयस्याद्ये पद्ये-

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्वं यदक्षरम्।

विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥ इति।

अत्र शब्दतत्वस्य ब्रह्मत्वोपपादनेन एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म इति स्पष्टमद्वैततत्वे समादरो विभाति।

विवर्तमानं स्फोटाख्यमक्षरतत्वं ब्रह्मेति शिवेति व्यपदिष्यत इति कारिकाशयः।

स्वरुपज्योतिरेवान्तः परा वागनपायिनी।

तस्यं दृष्टस्वरुपायामधिकारो निवर्तते॥

इति परापरस्फोटब्रह्मसाक्षातकारेणाधिकार मोक्षः सम्पद्यते।

तस्मात् सर्वमभावो वाभावो वा सर्वमिष्यते। शिवब्रह्म एकमेवाद्वितीयम् तस्यावस्थान्तरं किञ्चिन्नास्ति।

सोऽयमक्षरसमाम्नायः चन्दरतारकवत् प्रतिमण्डितो वेदितव्यो ब्रह्मराशिः।

-महर्षिपतञ्जलिः॥

ब्रह्मतत्वमेव शब्दरुपतया प्रतिभातित्यर्थः। इति कैयटः॥

भतृहरिः सिद्धान्तमिदं समर्थयन् लिखति।

Scanned with CamScanner

ISSN : 2395-1427

एकमेव यदाम्नातं भिन्नशक्तिव्यपाश्रयात्।

अपृथक्त्वेऽपि शक्तिभ्यः पृथक्त्वेनेव वर्तते॥

यद्विकार विकारि विषयमेकत्वरुपं वा सर्व तत्प्रकृत्वेकतवानतिक्रमेणेत्येतदाम्नातम्।

एकमेव ब्रह्मसर्वशक्तीति प्रमाणेन सिद्धेऽस्मिन्नर्थेऽविद्यापरिकल्पितस्य भावभोदस्यापारमार्थिकत्वात् कार्यनानात्वोन्नीयमान शक्तिभेद एवेकस्य युक्तो न तु स्वरुपभेदः इति हेलाराजः।

तदेव ब्रह्मतत्वं शिवतत्वं नागेशः स्फोटरुपेण स्वीकरोति।

कर्णपिधानादौ च सूक्ष्मतरवायुव्यज्यः शब्दब्रह्मरुपः स्फोटव्यञ्जकश्च। तादृशमध्यमानाव्यज्यः शब्दः स्फोटात्मकः ब्रह्मरुपो नित्यश्च।

साहित्यकाराः अपि-

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।

जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ॥

उपसंहारः-

अन्ते च शिव अनंत शिव कथा अनंत। ब्रह्माविष्णवादयः देवाः अपि यस्य पारं न गताः। वेदाः अपि नेति नेतीति वदन्ति। पुष्पदन्तः अपि-

लिखति यदि गृहित्वा शारदा सर्वकालं ।

तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥

सहायक ग्रन्थाः।
परमलघुमञ्जुषा - नागेशभट्टः -लोकमणिदाहाल।
वाक्यपदीयम् - भतृहरिः।
महाभाष्यम्।संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास - पंण्डित युधिष्ठरमीमांसक
परिभाषेन्दुशेखर - विश्वनाथमिश्र

Scanned with CamScanner

ISSN : [illegible]

श्रीसोमनाथसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य पुनर्वीक्षिता सन्दर्भिता शोधपत्रिका
A Peer Reviewed Research Journal of Shree Somnath Sanskrit University

शोधज्योतिः
Śōdhajyōtiḥ

वर्षम् - ०१ अङ्कः-०१ जनवरी-दिसम्बर-२०१९

Chief Editor
Prof. Gopabandhu Mishra

Managing Editor
Prof. Vinod Kumar Jha

Editors
Prof. Archana Kumari Dubey
Dr. Janakisharan Acharya
Dr. Kartik Pandya

श्रीसोमनाथसंस्कृतयुनिवर्सिटी, वेरावलम्

Scanned with CamScanner

विषयानुक्रमणिका

१. नामार्थविचारः (परमलघुमञ्जूषायाः परिप्रेक्ष्ये)	प्रो. विनोद कुमार झा	१
२. कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते	प्रो. अर्चना दुबे	७
३. अभिज्ञानशकुन्तलङ्लविमर्शः तत्र शिवतत्त्वञ्च	डॉ. ललितः पटेलः	१५
४. वेदानां संरक्षणे विकृतिपाठानां योगदानम्	डॉ. शत्रुघ्न पाणिग्राही	२१
५. अवस्थात्रये वृत्तिविचारः	डॉ. जानकीशरण आचार्यः	२७
६. कालविमर्शः	सुनिताबेन के. ठक्कर	३३
७. ज्यौतिषशास्त्रान्यग्रन्थानां सम्मते संस्कारणाम् आधुनिकयुगे महत्त्वम्	डॉ.रमेशचन्द्र शुक्लः	४९
८. रसगङ्गाधरे उत्तमोत्तमकाव्यस्योदाहरणे व्यङ्ग्यविमर्शः	जिगर एम्. भट्टः	६१
९. काव्यभेदाः	डा. यस्. वि. बी. के. गुप्ता	६७
१०.वास्तुशास्त्रानुसारं वाटकानिर्माणविधानम्	डॉ. हेमुबेन महेश राठौड	७१
११.न्यायकौस्तुभे सङ्गतिनिरूपणम्	मेडूरि. सूर्यनारयणः	७९
१२.हिरण्यगर्भजगत्कारणत्ववादनिरासः	गणेश हेगडे	८३
१३.गर्भाधान संस्कार	प्रो. कश्यप एम्. त्रिवेदी	९३
१४.लीलावती में काव्यसौन्दर्य	डॉ. पूनम घई	१०१
१५.Vedic Dharma: A Glorious Theory of Universal Humanity	Prof. D. N. Pandeya	१११

Scanned with CamScanner

वर्षम् - ०१ अङ्कः - ०१
जनवरी-दिसम्बर, २०१९

शोधज्योतिः
ISSN-2350-0700

नामार्थविचारः (परमलघुमञ्जूषायाः परिप्रेक्ष्ये)

प्रो. विनोद कुमार झा[१]

प्रस्तावना

नाम अर्थात् प्रातिपदिकम्=शब्दः तस्याऽर्थविषये शास्त्रकारेषु पर्याप्त-मतभेदो वर्त्तते। मीमांसका नामार्थविषये लाघवात् शब्दस्य शक्तिर्जातौ स्वीकुर्वन्ति। नैयायिका जात्याकृतिविशिष्टव्यक्तौ नामार्थं स्वीकुर्वन्ति, कारणमत्र महर्षिना गौतमेन पठितं सूत्रमिदं विद्यते- "जात्याकृतिव्यक्तयस्तु पदार्थः" (न्यायसूत्रे- २/२/६८)। वैयाकरणैर्लक्ष्याऽनुसारं कदाचिज्जातौ[२], कदाचिद् व्यक्तौ[३] कदाचिच्च विशिष्टे अर्थात् जातिविशिष्टव्यक्तौ तथा च व्यक्तिविशिष्टजातौ नामार्थः स्वीक्रियते। परमलघुमञ्जूषायां शक्यतावच्छेदकजात्युपलक्षितव्यक्तावर्थे नामार्थरिति चर्चा विशेषेणोपलभ्यते तथा च गौणरूपेण विशिष्टे अर्थात् जातिविशिष्टव्यक्तौ व्यक्तिविशिष्टजातौ च।

मीमांसकैर्वैयाकरणमतखण्डनं स्वमतोपस्थापनञ्च

मीमांसकाश्शब्दानां शक्तिर्जातौ स्वीकुर्वन्ति न तु व्यक्तौ। व्यक्तौ शक्तिस्वीकारे मीमांसकैर्दोषद्वयं प्रस्तूयते- १. आनन्त्यदोषः २. व्यभिचारदोषः। आनन्त्यदोषस्य तात्पर्यं वर्त्तते- देशभेदेन कालभेदेन च व्यक्तिरनन्ता सीमारहिता च भवति। प्रत्येकस्यां व्यक्तौ शक्तिस्वीकार आनन्त्यदोषः प्रसक्तो भवति। न च तस्य आनन्त्यदोषस्य निवारणाय नहि सर्वासु व्यक्तिषु प्रत्युत कस्याश्चिद् एकस्यां व्यक्तौ शक्तिस्वीकारे न दोषरिति वाच्यम्, तथा सति व्यभिचारदोषस्य सत्त्वात्। कारणं यस्याम् एकस्यां व्यक्तौ शक्तिग्रहो भवति, तस्या येन शब्देन ज्ञानं क्रियते ततो भिन्नव्यक्तेर्ज्ञानं तेन शब्देन न भवेत्, किन्तु भिन्नव्यक्तेरपि ज्ञानं भवत्येव। एवम्प्रकारेण शक्तिज्ञानरूपकारणस्य अभावेऽपि बोधरूपं कार्यं भवति, तस्मादस्ति व्यभिचाररूपो दोषः। अत एव उपर्युक्तदोषद्वयस्य निवारणाय जातावेव नामार्थशक्तिः स्वीकरणीया।

---

[१] व्याकरणसङ्कायाध्यक्षोऽनुस्नातकभवनाध्यक्षचरः, श्रीसोमनाथसंस्कृतयुनिवर्सिटी, वेरावलम्-३६२२६६

[२] जात्याख्यायामेकस्मिन् बहुवचनमन्यतरस्याम्- १/२/५८

[३] सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ- १/२/६४

Scanned with CamScanner

जातौ शक्तिस्वीकारेऽपि व्यक्तिं विना जातेरधिष्ठानस्याऽसम्भवाद् 'गामानय' इत्यादौ अन्वयाऽनुपपत्या च तदाश्रयव्यक्तेर्बोधो लक्षणाशक्त्या क्रियते। उच्यते च- **'नागृहीतविशेषणा बुद्धिर्विशेष्य उपजायते'** अर्थात् या बुद्धिर्निश्चितरूपेण विशेषणात्मिका सञ्जाता वर्तते, यया बुद्ध्या निस्सन्देहं विशेषणं गृहीतं वर्त्तते सा बुद्धिर्विशेष्यं प्रति क्षीणा भवति, उक्तञ्चापि काव्यप्रकाशे- **'विशेष्यं नाभिधा गच्छेत् क्षीणशक्तिर्विशेषणे'**[४] अर्थात् अभिधाद्वारा विशेषणीभूताया जातेर्बोधकत्वेन क्षीणशक्तिकः शब्दो विशेष्यभूतां व्यक्तिं कथयितुं न पारयति। व्यक्तिस्तु लक्षणाद्वारैव उच्यते। अत्र विशेषणशब्देन जातेः तथा च विशेष्यशब्देन व्यक्तेर्ग्रहणं वर्त्तते। विशेषणज्ञानं विना विशेष्यज्ञानं न भवति, तस्माद् व्यक्तिं प्रति विशेषणीभूतायां जातौ शब्दस्य अभिधाद्वारा शक्तिस्वीकारे विशेष्यस्य व्यक्तेर्बोधो लक्षणाद्वारैव जायते।

वैयाकरणैर्मीमांसकमतखण्डनं स्वमतोपस्थापनञ्च

अभिधावृत्त्या उपस्थितार्थेन अन्वयानुपपत्तौ लक्षणावृत्तिः स्वीक्रियते।उक्तञ्चापि- **मुख्यार्थ-बाधे तद्युक्तो ययाऽन्योर्थः प्रयीयते। रूढेः प्रयोजनाद् वाऽसौ लक्षणाशक्तिरर्पिता।।**[५] जातौ शब्दस्य शक्तिरभिधाद्वारा तथा च अन्वयाऽनुपपत्या विशेष्यस्य व्यक्तेर्बोधो लक्षणाद्वारा स्वीकारेऽपि व्यक्तिभानानापत्त्येन 'गोत्वम् अस्ति' इत्यर्थे अन्वयाऽनुपपत्त्यभावेन लक्षणास्वीकाराभावात् 'गौरस्ति' इति प्रयोगे मीमंसकमतौ अव्याप्तिर्वर्त्तते। अस्माकं वैयाकरणानां पक्षे व्यक्तीनामानन्त्येऽपि शक्यतावच्छेदकजातेरुपलक्षणत्वेन[६] तथा च तस्या जातेरैक्येन तादृशजात्युपलक्षितव्यक्तौ शक्तिस्वीकारे अनन्तशक्तिकल्पनाविरहाद् अगौरवापत्तिरेवाऽस्ति। अतः 'गङ्गायां घोषः' इत्यादिस्थले लक्षणावृत्तौ यथा लक्ष्यतावच्छेदकः तीरत्वादिकं भवति तथैव शक्यतावच्छेदकजातिर्या शक्यार्थस्य व्यक्तेः उपलक्षिका वर्तते तस्याः शक्यतावच्छेदकजातेश्शब्दार्थाऽस्वीकारेऽपि दोषाऽभावो विद्यते। **'नागृहीतविशेषणा बुद्धिर्विशेष्य उपजायते'** इत्यनुरोधेन विशेषणविशिष्टविशेष्यबोधे अर्थात् जातिविशिष्टव्यक्तौ तात्पर्येऽपि भवद्भिरुक्ते व्यक्तेर्विशेषणीभूतायां जातौ शब्दस्य अभिधाद्वारा शक्तिः तथा च विशेष्यव्यक्तौ लक्षणाद्वारा शक्तिः स्वीकरणीयेति तात्पर्येऽस्ति प्रमाणाऽभावः। सहैव जातेरुपलक्षकत्वेन जात्याश्रयभूतसकलव्यक्तिबोधेन व्यक्त्यन्तरस्य बोधाऽप्रसङ्गोऽपि वर्तते, अतः जात्युपलक्षितव्यक्तावेव नामार्थः स्वीकरणीयः। उक्तञ्चापि तन्त्रवार्तिके-

आनन्त्येऽपि हि भावानाम् एकं कृत्वोपलक्षणम्।
शब्दः सुकरसम्बन्धो न च व्यभिचरिष्यति।।

---

[४] काव्यप्रकाशस्य द्वितीयोल्लासे दशम्याः कारिकाया वृत्तावुद्धृतमेतत्।

[५] साहित्यदर्पणे- २/९

[६] उपलक्ष्यते अनेनेति उपलक्षणम्=चिह्नम्, करणे ल्युट्।

Scanned with CamScanner

अर्थात् **भावानाम्**=पदार्थानाम् आनन्त्येपि **एकं कृत्वोपलक्षणम्**=जातिमेकामुपलक्षणत्वेन स्वीकृत्य **शब्दः सुकरसम्बन्धः**=शब्दस्य वाच्यतारूपः सम्बन्धः सुग्राह्यो भविष्यति, न च व्यभिचरिष्यति=सर्वासु व्यक्तिषु शब्दस्य शक्तिर्विद्यते इति मननाद् शब्दे व्यभिचारनामको दोषो न भविष्यति।

अस्माकं मतं एवम्प्रकारेणापि उचितमेवाऽस्ति। यथा-

शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोशाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च।
वाक्यस्य शेषाद् विवृतेर् वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः।।

अर्थात् शक्तिग्रहम्=शक्तिज्ञानं व्याकरणाद्, उपमानात्, कोशाद्, आप्तवाक्याद्, व्यवहाराद्, वाक्यस्य शेषाद्, विवृतेः= व्याख्यानात्, सिद्धपदस्य=प्रसिद्धपदस्य सान्निध्यतः=सामीप्याद् भवतीति वृद्धाः=विद्वान्सः वदन्ति। तत्र अष्टसु शक्तिबोधकेष्वुपायेषु शिरोमणिर्व्यवहारो व्यक्तावेव शक्तिं बोधयति, लोके गवादिपदेन व्यक्तेरेव बोधात्।

वस्तुतः **'न ह्याकृतिपदार्थकस्य[७] द्रव्यं न पदार्थः'** इति **"सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ"** सूत्रस्थभाष्यानुरोधेन आकृतिपदार्थकानां विदुषां मते द्रव्यं पदार्थो न भवति एवं नास्ति, अपितु विशिष्टे पदार्थत्वं विद्यते अर्थात् जातिविशिष्टव्यक्तिराहोस्विद् व्यक्तिविशिष्टजातिः पदार्थो वर्तते। कारणं लोके शब्दप्रयोगेन तथैवाऽनुभवः क्रियते तथा च अनुभव-सिद्धस्य अपलापः=असत्यप्रतिपादनम् अयोग्यो भवति।

लिङ्गस्य नामार्थत्वम्- जातेर्व्यक्तेश्चानन्तरं लिङ्गमपि नामार्थो विद्यते, टाबादिप्रत्ययानां नामार्थलिङ्गस्य द्योतकत्वात्। अन्यथा टाबादिप्रत्ययानां नामार्थलिङ्गस्य वाचकत्वे=द्योतकत्वाभावे सति टाबादिप्रत्ययानामभावे स्त्रीलिङ्गेभ्यः 'वाग्', 'उपानद्' इत्यादिभ्यः प्रयोगेभ्यः 'इयं तव वाग्', 'इयं तव उपानद्' एतत्प्रकारकस्य स्त्रीबोधस्य अनापत्तिः स्यात्। वैयाकरणनये 'अयम्' इति व्यवहारविषयत्वं पुंस्त्वम्, 'इयम्' इति व्यवहारविषयत्वं स्त्रीत्वं तथा 'इदम्' इति व्यवहारविषयत्वं नपुंसकत्वं वर्त्तते। तस्मादेव कारणात् खट्वादिशब्दवाच्यस्य स्तनकेशादिमत्त्वरूपलौकिकस्त्रीत्वाभावेऽपि स्त्रीलिङ्गेभ्यः खट्वादिशब्देभ्यः स्त्रीत्वद्योतनाय टाबादि-प्रत्ययाः क्रियन्ते।

संख्याया नामार्थत्वम्- जातेः, व्यक्तेः लिङ्गस्य चाऽनन्तरम् एकवचनं, द्विवचनं बहुवचनञ्चापि संख्या नामार्थत्वेन स्वीक्रियन्ते, विभक्तीनां संख्याया द्योतकत्वात्। अत एव=विभक्तिसंज्ञकानां सुँप्तिङ्प्रत्ययानां द्योतकत्वादेव **"आदिर्ञिटुडवः"**[८] सूत्रेऽस्मिन् आदिरित्यत्र बहुत्वेऽर्थे एकवचनं 'सुँ' प्रत्ययो

---

[७] आकृतिः पदार्थो यस्येति आकृतिपदार्थकः (बहुव्रीहि-समासः), तस्य आकृतिपदार्थकस्य।

[८] पाणिनीय-अष्टाध्यायी-सूत्रक्रमाङ्कः- १/३/५

Scanned with CamScanner

भवति। अन्यथा विभक्तिसंज्ञकानां सुँप्तिङ्प्रत्ययानां नामार्थसंख्याया द्योतकत्वाभावे अर्थात् वाचकत्वस्वीकारे अन्वयव्यतिरेकाभ्यां 'जस्' प्रत्ययस्य बहुत्वे वाच्यत्वे सति तं विना नामार्थ-बहुत्वप्रतीत्यभावेन तद्बोधाभावाद् बहुत्वबोधनाय आदिरित्यत्र बहुवचनं करणीयम्।

कारकस्य नामार्थत्वम्- कारकमपि पञ्चमनामार्थेन स्वीक्रियते। न च अन्वयव्यतिरेकाभ्यां कारकस्य प्रत्ययार्थवाच्यत्वम् अङ्गीकरणीयम्, 'दधि तिष्ठति', 'दधि पश्य' इत्यादौ प्रत्ययं विनापि कर्त्रादिकारकस्य बोधप्रसङ्गात्। न च लुप्तप्रत्ययस्मरणद्वारा कर्त्रादिकारकस्य जनेभ्यः प्रतीतिरिति वाच्यम्, ये जनाः प्रत्ययलोपं न जानन्ति तेषामपि प्रत्ययज्ञानं विना केवलं नामार्थेनैव कर्त्रादिकारकस्य प्रतीतिसम्भवात्।

शब्दस्वरूपस्य नामार्थत्वम्- विशेषणतया शब्दोऽपि शाब्दबोधे भासते, 'युधिष्ठिर आसीत्' इत्यादिवाक्येषु 'युधिष्ठिर' शब्दवाच्यः कश्चन आसीत् इति बोधात्। उक्तञ्चापि वाक्यपदीये-

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते।।[९]

अर्थात् संसारे किमपि ज्ञानम् एतादृशं नास्ति यत् शब्दज्ञानं विनैव भवितुं शक्नोति। सर्वविधं ज्ञानं शब्देन सह सम्बद्धं सम्भूय एव प्रकटितं भवति। एतदतिरिक्तम्-

ग्राह्यत्वं ग्राहकत्वं च द्वे शक्ती तेजसो यथा।
तथैव सर्वशब्दानाम् एते पृथग् अवस्थिते।।[१०]

अर्थात् यथा **तेजसः=प्रकाशस्य ग्राह्यता=प्रकाश्यत्वं ग्राहकत्वं=प्रकाशकत्वं** च द्वे शक्ती विद्येते, तथैव समेषां शब्दानाम् इमे द्वे शक्ती पृथक् पृथक् अवस्थिते वर्तेते। अर्थात् शब्दो बोध्योऽपि भवति बोधकोऽपि भवति। अथ च-

विषयत्वम् अनादृत्य शब्दैर्नार्थः प्रकाश्यते।[११]

अर्थात् ज्ञानस्य विषयताम्=शब्दत्वम् अनादृत्य=अप्रकटीकृत्य शब्दद्वारा अर्थज्ञानं न भवति। शब्दानां स्वरूपमपि शब्दैः भासितं भवति, अत एव 'विष्णुम् उच्चारय' इत्यादिस्थलेषु अर्थस्य उच्चारणाऽसम्भवात् शब्दोच्चारणं क्रियते।

---

९ वाक्यपदीये- १/१२३

१० वाक्यपदीये- १/५५

११ वाक्यपदीये- १/५६

Scanned with CamScanner

शाब्दबुद्धौ शब्दस्वरूपस्यापि भासितत्वाद् अनुकरणेन अनुकार्यस्वरूपस्य ज्ञानं भवति। तथाहि- अनुकरणस्य परिभाषायाम् अनुकरणसदृशस्य अर्थात् अनुकरणस्य इव वर्णानुपूर्विमतोऽनुकार्यभूतस्य शब्दस्य ज्ञानसम्पादनमेव प्रयोजनं यस्य, एतादृशस्य उच्चारणस्य विषयत्वम् अनुकरणत्वं भवति तथा च अनुकार्यस्य परिभाषायाम् अनुकार्यसदृशेन अर्थात् अनुकार्यस्य इव वर्णानुपूर्विमता अनुकरणभूतेन शब्देन अभिधीयमानशब्दसम्पादनत्वम् अनुकार्यत्वं भवति। यथा- **स्व-सदृश-शब्दमात्र-बोध-तात्पर्यकोच्चारण-विषयत्वम् अनुकरणत्वम्। स्व-सदृश-शब्द-प्रतिपाद्यत्वे सति शब्दत्वम् अनुकार्यत्वम्।**

अनुकरण-अनुकार्ययोर्मध्ये पक्षद्वयं वर्तते- १. भेदपक्षः २. अभेदपक्षः। तत्र भेदपक्षे अनुकार्यस्वरूपस्य प्रतिपादकत्वेन अनुकरणस्य अर्थवत्त्वात् तस्य प्रातिपदिकसंज्ञायां सञ्जातायां प्रातिपदिकादनुकरणात् स्वादि-विधिर्भवति। भेदपक्षस्य बोधकाः **"भुवो वुग्लुङ्लिटोः"**[१२] इत्यादिसूत्रेषु पठिताः 'भुवः' इत्यादयः षष्ठीनिर्दिष्टाः शब्दा वर्त्तन्ते। अनुकार्याद् अनुकरणम् अभिन्नम् इत्यभेदविवक्षायाम् अनुकरणस्य अर्थवत्त्वाभावेन प्रातिपदिकसंज्ञाभावान्नैव[१३] तस्मात् स्वाद्युत्पत्तिर्भवति नैव च तस्य पदसंज्ञा[१४] जायते। अभेदपक्षस्य ज्ञापकस्तु 'भू सत्तायाम्' इत्यादिषु 'भू' इत्यादिनिर्देशोऽस्ति। 'भू सत्तायाम्' इत्यत्र 'भू' इत्यस्य प्रातिपदिकसंज्ञाऽभावात् पदत्वाभावेऽपि शिष्टप्रयोगवशात् तस्य साधुत्वं ज्ञेयम्।

ननु 'अपदं न प्रयुञ्जीत' इति भाष्याद् 'भू सत्तायाम्' इत्यादिषु 'भू' इत्यादीनां प्रयोगोऽसाधुरिति चेन्न? 'अपदम्' इत्यस्य 'अपरिनिष्ठितम्' इत्यर्थात्। परिनिष्ठितत्वञ्च- **अप्रवृत्त-नित्य-विधि-उद्देश्यतावच्छेदकानाक्रान्तत्वम्।** अर्थात् अप्रवृत्तो यो नित्य-विधिर्वर्त्तते तस्य उद्देश्यतावच्छेदकेन अनाक्रान्तत्वम्=यत्र अप्रवृत्तनित्यसूत्रस्य प्रवृत्तिर्भवितुं न शक्नोति अर्थात् अप्रवृत्तिस्थलम्=अनुदाहरणम् परिनिष्ठितम्=पदं भवति। अस्य पदकृत्यं यथा- 'देवदत्तो भवति' इत्यादौ **"तिङ्ङतिङः"**[१५] इति सूत्रेण अनुदात्तस्वरे सञ्जाते 'देवदत्तः' इति अतिङन्तात् परस्य 'भवति' इति तिङन्तस्य **"तिङ्ङतिङः"** इति सूत्रस्य उद्देश्यतावच्छेदकाक्रान्तत्वात्=उदाहरणत्वात् तत्र अपरिनिष्ठितत्ववारणाय परिनिष्ठितत्वपरिभाषायाम् 'अप्रवृत्त' इति पदं गृहीतम्। 'सेधिता' इत्यादिषु विकल्पेन इडागमविधायकेन **"स्वरति-सूति-सूयति-धूञूदितो वा"**[१६] इति सूत्रेण पाक्षिकप्रवृत्तिद्वारा इडागमे कृते पुनः 'सेद्धा' इत्यादौ

---

[१२] पाणिनीय-अष्टाध्यायी-सूत्रक्रमाङ्कः- ६/४/८८

[१३] अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्- १/२/४५

[१४] सुँप्तिङन्तं पदम्- १/४/१४

[१५] पाणिनीय-अष्टाध्यायी-सूत्रक्रमाङ्कः- ८/१/२८

[१६] पाणिनीय-अष्टाध्यायी-सूत्रक्रमाङ्कः- ७/२/४४

Scanned with CamScanner

"स्वरति-सूति-सूयति-धूञूदितो वा" इति विकल्पसूत्रस्य प्रवृत्तौ सत्यां तत्प्रवृत्तिवारणपूर्वकपरिनिष्ठितत्वसम्पादनाय परिनिष्ठितत्वपरिभाषायाम् 'नित्य-विधिः' इति पदं स्वीकृतम्। अभेदपक्षे 'भू सत्तायाम्' इत्यादि-स्थलेषु 'भू' इत्यादीनां "अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्" इति सूत्रस्य उद्देश्यतावच्छेदकानाक्रान्तत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञाया अप्रवृत्तावपि विभक्तिरहितानां 'भू' इत्यादीनां साधुत्वसम्पादनाय परिनिष्ठितत्वलक्षणे 'उद्देश्यतावच्छेदकानाक्रान्तत्वम्' इति पदं अङ्गीकृतम्। एवम्प्रकारेण विभक्तिरहितानां 'भू' इत्यादीनां परिनिष्ठितत्वरूपं पदत्वं वर्त्तत एव। परिनिष्ठित-शब्दस्य पर्यायवाची शब्दो वर्त्तते साधुरिति।

न च अनुकरण-अनुकार्ययोर्मध्य अभेदविवक्षायाम् तयोः सर्वथाऽभेदत्वाद् अनुकरणभूते शब्दे अनुकार्य-स्वरूपस्य बोधकत्वाभावाद् अनुकरणभूतेन शब्देन कथम् अनुकार्य-शब्दस्वरूपस्य ज्ञानं भवतीति वाच्यम्? सादृश्येति नामकेन सम्बन्धेन अनुकरणभूतस्य शब्दस्य अनुकार्य-शब्दस्वरूप-बोधकत्वाद् अर्थात् अनुकरण-अनुकार्ययोर्मध्ये 'वर्णाऽनुपूर्वी' इत्यादिरूपा या समानता वर्त्तते, यत् सादृश्यं वर्त्तते तेन कारणेन अनुकरणभूतः शब्दोऽनुकार्य-शब्द-स्वरूपस्य ज्ञानं कारयति। यथा सर्वतोभावेन मैत्र-सदृश-मूर्तिदर्शने मैत्रस्य स्मरणं भवति तथैव अनुकरण-शब्दे वाचकत्वाभावेऽपि 'भू' इत्याद्यनुकरणज्ञाने तादृश-अनुकार्यस्य ज्ञानं भवति।

Scanned with CamScanner

षाण्मासिकी संस्कृतशोधपत्रिका [illegible]

[illegible]

Vol. XI October, 2018- March, 2019 No. 2

वर्षम्-११, अक्टूबर २०१८ - मार्च्च २०१९, अङ्कः - द्वितीयः

प्राचीसुधा

PRACI SUDHA

[illegible] SANSKRIT RESEARCH JOURNAL

"प्राचीसुधा" सुललिता बहुशास्त्रतत्त्व-
पूर्णा जगज्जनहिताऽखिललोकमान्या ।
आषाण्मासिकी सुधरूपा परिवेषयन्ती
सराजतां निराभिमानबुधेषु नित्यम् ॥

सम्पादक: सञ्चालकश्च

प्रो. विश्वनाथस्वाईं

सहयोगिसम्पादका:

डॉ. [illegible]

[illegible]

[illegible] प्राच्यविद्याशोधप्रतिष्ठानम्, पुरी [illegible]

[illegible] RESEARCH ACADEMY [illegible]

[illegible]

प्रदाय, प्रधाय चेत्यादौ तुँगागमनिवृत्तिपूर्वकम् "ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः"- सूत्रार्थविश्लेषणम् (लघुशब्देन्दुशेखरस्य परिप्रेक्ष्ये)

प्रो.विनोदकुमार झा

सूत्रार्थः - ह्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञाविधायके "ऊकालोऽज्झ्रास्वदीर्घप्लुतः" इति त्रिपदात्मके प्रकृतसूत्रे ऊकालः - १/१, उच् - १/१, ह्रस्वदीर्घप्लुतः -१/१ इति त्रीणि पदानि सन्ति। उश्च ऊ३श्च ऊश्च इति वः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः समासः)। वां काल इति ऊकालः (षष्ठीतत्पुरुषः समासः)। "कालशब्दो मात्रापर्यायः कालसदृशे लाक्षणिकः" अर्थात् कालशब्दस्य अत्र "मात्रा" अर्थः तथा कालशब्दः कालसदृशेऽर्थे लाक्षणिको विद्यते। ऊकालः कालो यस्य स ऊकालः (बहुव्रीहिः समासः)। अथवा उश्च ऊश्च ऊ३श्च इति वः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः समासः)। वः ("ऊ" स्वस्वोच्चारणकाल इव अर्थे लाक्षणिकः अर्थात् त्रिविध उकारः स्वस्वोच्चारणकालसदृशम् अर्थं लक्षणाशक्त्या कथयति) कालः (उच्चारणकालः) यस्य स ऊकालः (बहुव्रीहिः समासः)। ह्रस्वश्च दीर्घश्च प्लुतश्च तेषां समाहार इति ह्रस्व-दीर्घ-प्लुतः (समाहारद्वन्द्वः समासः)। यद्यपि ह्रस्वश्च दीर्घश्च प्लुतश्च इति ह्रस्व-दीर्घ-प्लुतः (इतरेतरयोगद्वन्द्व समासः), एवम्प्रकारेण इतरेतरयोगद्वन्द्वसमासेऽपि सौत्रमेकवचनं वक्तुं शक्यम्, तथापि "लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य" इति नियमेन तत्र तत्र वार्तिकोक्तेर्लिङ्गस्य लौकिकत्वात्तद्व्यत्ययकल्पनमेवोचितं, न तु शास्त्रीयवचनव्यत्ययकल्पनम्। अत एव उच्यते - उश्च ऊश्च ऊ३श्च = वः । वां काल इव कालो यस्य सोऽच् क्रमाद्ध्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञः स्यात्।

न च सादृश्यं भेदमूलकं भवति, अर्थात् भिन्ने पदार्थद्वये समानता दृश्यते च, तस्माद् एकमात्रिकस्य उकारस्य, द्विमात्रिकस्य ऊकारस्य त्रिमात्रिकस्य ऊ३कारस्य च

Scanned with CamScanner

उच्चारणकाल इव उ, ऊ, ऊ३ इति त्रिविधस्य उकारस्य उच्चारणकालत्वाभावात् स कथं क्रमशः ह्रस्व-दीर्घ-प्लुतं-संज्ञको भवितुं शक्नोतीति वाच्यम्, कुक्कुटरुते उकारे एकद्वित्रिमात्रत्वप्रसिद्धेः, तस्यैवात्र ग्रहणाच्च। अत एव अकारादयो नोक्ताः।

न च उकालो ह्रस्वः, ऊकालो दीर्घः, ऊ३कालो प्लुतः इत्यत्र उकालो ह्रस्वः इति प्रथमवाक्ये आगतस्य "उ" इत्यस्य अविधीयमानाऽणत्वेन "अणुदित्सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः" इत्यनेन सवर्णबोधकत्वात् ह्रस्व इव दीर्घप्लुतानामपि अचां ह्रस्वसंज्ञकत्वात् प्रदाय, प्रधाय इत्यादौ पिति कृति यकारे परे ह्रस्वसंज्ञकस्य आकारस्य "ह्रस्वस्य पिति कृति तुँक्" इत्यनेन तुँगागमस्य प्राप्तिरिति वाच्यम्, उच्चारितसम्बन्धिकालसदृशकालस्यैव सञ्ज्ञा, न तु तेन गृहीतसम्बन्धिकालसदृशकालस्यापि इत्यर्थेन अदोषात् अर्थात् उकालः इत्यत्र कालेन सह उच्चारितस्य अकारस्य यः कालः अर्थात् एकमात्रिकः कालो विद्यते तत्कालसदृशस्यैव एकमात्रिककालयुक्तस्य अकारस्य ह्रस्वसंज्ञा भवति, न तु तेन = उकारेण "अणुदित्सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः" सूत्रद्वारा गृहीतसम्बन्धिएकमात्रिकद्विमात्रिक-त्रिमात्रिककालसदृशस्य त्रिविधकालसहितस्य अष्टादशविधस्यापि उकारस्य, इत्यर्थेन अदोषात्। तथाहि - "ऊकालोऽज्झस्वदीर्घप्लुतः" इत्यस्य स्थाने यदि "ऊअज्झस्वदीर्घप्लुतः" इति सूत्रं क्रियते तर्हि "ऊअज्झस्वदीर्घप्लुतः" इत्यवस्थायां "ऊ" इत्यस्य स्वयमेव अच्चाद् अच् ग्रहणस्य का आवश्यकता? एवम्प्रकारेण अचः ग्रहणम् अनावश्यकस्य स्थितौ तिष्ठति, अतः अच्ग्रहणसामर्थ्याद् ऊकारासदृशस्य अचः ग्रहणं भवति तथा च सादृश्यं कालकृतमेव गृह्यते व्याख्यानानुरोधेन। एवम्प्रकारेण "ऊअज्झस्वदीर्घप्लुतः" इति सूत्रद्वारैव उश्च ऊश्च ऊ३श्च = वः। वां काल इव कालो यस्य सोऽच् क्रमाद्ध्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञः स्यादित्यर्थस्य लाभात् "ऊकालोऽज्झस्वदीर्घप्लुतः" सूत्रे कालग्रहणं व्यर्थीभूय ज्ञापयति - उच्चारितसम्बन्धिकाल-सदृशकालस्यैव सञ्ज्ञा, न तु तेन गृहीतसम्बन्धिकालसदृशकालस्यापि। तेन उकालः इत्यत्र एकमात्राकालिकस्य उसदृश्यस्य एकमात्राकालिकस्य अचः ह्रस्वसंज्ञा, ऊकाल इत्यत्र द्विमात्राकालिकस्य ऊसदृशस्य अचः दीर्घसंज्ञा, ऊ३कालः इत्यत्र त्रिमात्राकालिकस्य उसदृशस्य अचः प्लुतसंज्ञा जायते। एवम्प्रकारेण उकालो ह्रस्वः इति प्रथमवाक्ये एकमात्राकालिकस्य उसदृशस्य एकमात्राकालिकस्य अच अकारस्य एव ह्रस्वसंज्ञाकारणात् प्रदाय, प्रधाय इत्यादौ पिति कृति यकारे परे दीर्घस्य आकारस्य "ह्रस्वस्य पिति कृति तुँक्" इत्यनेन

Scanned with CamScanner

तुँगागमस्य प्राप्तिर्न भवति। तदुक्तं भाष्ये - यावत्तपरकरणं तावदत्र कालग्रहण् अर्थात् तपरकरणद्वारा यावत्कार्यं सिद्धं भवति तावदेव कार्यं कालग्रहणद्वारा अपि सिद्धं भवति। अत एव तपरकरणद्वारा यथा "अदेङ् गुणः" इत्यनेन ह्रस्वस्य अकारस्य गुण-संज्ञा भवति, तपरकारणद्वारा यथा "अतो भिस् ऐस्" इत्यनेन ह्रस्वाकारात् परस्यैव भिसः स्थाने ऐस् आदेशो भवति तथैव अर्थात् उकालः इत्यत्र कालेन सह उच्चारितस्य उकारस्य यः कालः अर्थात् एकमात्रिकः कालो विद्यते तत्कालसदृशसस्यैव एकमात्रिककालयुक्तस्य उकारस्य ह्रस्वसंज्ञा भवति।

(**विशेषः** - प्रगृह्यसंज्ञाविधायके "निपात एकाजनाङ्" इति सूत्रे एकवचनान्तस्य "अच्" पदस्य ग्रहणेनैव एकस्य अचः ग्रहणात् एकग्रहणं व्यर्थीभूय ज्ञापयति - "वर्णग्रहणे जातिग्रहणम्"। अत एव "दम्भ्+स" इत्यत्र "दम्भ+इच्च" इति सूत्रेण इत्वानन्तरं "दिम्भ्+स" इत्यवस्थायां "हलन्ताच्च" इत्यनेन मकारभकारयोरेकेन हल्त्वेन ग्रहणाद् इकः इकारात् परः हल् विद्यते हल्त्वजात्यवच्छिन्नरेकः हल् "म्भ्"ए तस्मात्परः सनः सकारः किन्द्भवति तथा च अन्यद् अभीष्टं कार्यं सम्भूय दिप्सति इति रूपं सम्पन्नतां प्राप्नोति।)

न च यः शब्दो वर्णबोधको भवति तेन शब्देन जातेर्ग्रहणं भवति अर्थात् "वर्णग्रहणे जातिग्रहणम्"। एवम्प्रकारेण "ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः" इति सूत्रे वर्णबोधकेन अच् - शब्देन जातिग्रहणद्वारा अच्त्वजात्यवच्छिन्नानाम् अनेकेषाम् अचाम् एकाच्त्वेन ग्रहणं भवति तथा च तितउच्छत्रम् इत्यत्र तकारोत्तवर्तिनः अकारस्य उकारस्य च उच्त्वजात्यवच्छिन्नेन एकेन अच्त्वेन ग्रहणात् अकारोकारयोरेकैकमात्रत्वेन मात्राद्वयस्य दीर्घत्वात् "पदान्ताद्वा" इति सूत्रेण विकल्पेन तुँगापत्तिरिति वाच्यम्, ज्ञापकसिद्धस्य "वर्णग्रहणे जातिग्रहणम्" इत्यस्य असार्वत्रिकत्वात्। अर्थात् ज्ञापकसिद्धं सार्वत्रिकं न भवति अर्थात् सर्वत्र न प्रवर्तते।

"वर्णग्रहणे जातिग्रहणम्" इत्यस्य सार्वत्रिकत्वस्वीकारे द्वितीयम् उत्तरं प्रस्तूयते यत् "पदान्ताद्वा" इत्यनेन प्रवृत्तं बहिरङ्गं वैकल्पिकं तुँकं बाधित्वा "छे च" इत्यनेन अन्तरङ्गो नित्यः तुँगागमो भविष्यति, अन्तर्भूतनिमित्त्वेन वैकल्पिकतुँगागमापेक्षया नित्यतुँगागमस्य अन्तरङ्गत्वात्।

"ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः" इति सूत्रे अज्ग्रहणात् क्यप्प्रत्ययान्ते प्रतक्ष्य इत्यादौ

Scanned with CamScanner

अर्द्धार्द्धमात्राकालिकयो: ककारषकारयो: संयोगस्य क्षकारस्य एकमात्रत्वेन, एकमात्रिकस्य क्षकारस्य ह्रस्वसंज्ञकत्वेऽपि तस्य अच्त्वाभावात् पिति कृति यकारे परे ह्रस्वसंज्ञकस्य क्षकारस्य "ह्रस्वस्य पिति कृति तुँक्" इत्यनेन तुँगागमो न भवति।

सन्दर्भा: -

१. "ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुत:" सूत्रे "ओ" इत्यनन्तरम् अवग्रहस्य चिह्नं प्रदर्शयति यद् "ओ" इत्यत्र एकमात्रिकोऽकारो मिलितो विद्यते।

२. "ऊ" इति एकद्वित्रिमात्राणां क्रमेण प्रश्लेषनिर्देशो व्याख्यानात्। (आचार्य-विश्वनाथमिश्रेण लिखिते सुबोधिनीहिन्दीव्याख्योपेते लघुशब्देन्दुशेखरे, पृष्ठ-संख्या-७८)

३. "सप्तम्युपमानपूर्वपदस्य बहुव्रीहिर्वाच्यो वा चोत्तरपदलोप:" वार्तिकेन समास: उत्तरपदलोपश्च।

४. उकार: कस्यापि कालो न भवति, तेन त्रिविधस्य "ऊ" वर्णस्य कालेन सह सामानाधिकरण्यभावाद् मुख्यार्थबाधे "व: कालो यस्यासौ ऊकाल:" इति बहुव्रीहि-समासे "ऊ" वर्णस्य स्वस्वोच्चारणकालसदृशेऽर्थे लक्षणा क्रियते।

५. तेन स्वोच्चारणकालसदृशो लिख्यते। (आचार्यविश्वनाथमिश्रेण लिख्यते सुबोधिनीहिन्दीव्याख्योपेते लघुशब्देन्दुशेखरे, पृष्ठ-संख्या-७८)

६. "जात्याख्यायामेकस्मिन्बहुवचनमन्यतरस्याम्" इति सूत्रेण जातौ एकवचनं बोध्यम्।

७. स कालो यस्येति बहुव्रीहि: (फलितार्थकनम् - "व: कालो यस्यासौ ऊकाल: इत्यस्य)। (आचार्यविश्वनाथमिश्रेण लिखिते सुबोधिनीहिन्दीव्याख्योपेते लघुशब्देन्दुशेखरे, पृष्ठ-संख्या-७८, ७९)"

८. सौत्रत्वात् पुँल्लङ्गम्।

९. प्रकृतसूत्रोपरि शब्दरत्ने (प्रौढमनोरमायाम्)

१०. एकमात्रो भवेद् ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते। त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं चाऽर्धमात्रिकम्।

११. पाणिनि-अष्टाध्यायी-सूत्रपाठ: -१.१.६९

Scanned with CamScanner

१२. पाणिनि-अष्टाध्यायी-सूत्रपाठः -६.१.७१
१३. पाणिनि-अष्टाध्यायी-सूत्रपाठः -१.१.२
१४. पाणिनि-अष्टाध्यायी-सूत्रपाठः -७.१.९
१५. पाणिनि-अष्टाध्यायी-सूत्रपाठः -१.१.१४
१६. पाणिनि-अष्टाध्यायी-सूत्रपाठः -७.४.५६
१७. पाणिनि-अष्टाध्यायी-सूत्रपाठः -१.२.१०
१८. पाणिनि-अष्टाध्यायी-सूत्रपाठः -६.१.७६
१९. पाणिनि-अष्टाध्यायी-सूत्रपाठः -६.१.७३

अध्यक्षः, व्याकरणविभागः
श्रीसोमनाथसंस्कृतयुनिवर्सिटी
वेरावलम्, गुजरातराज्यम्

Scanned with CamScanner